डॉ० ब्रह्मदत्त अवस्थी

गद्य कल्प

(दीर्घकालीन कृति–विधाओं का संकलन)

श्री ब्रजमोहन गुप्त 'इन्द्रनारायण'

कमलेश्वर प्रकाशन

गणेश चौक छिन्दवाड़ा म प्र

मूल्य : रु० ४०/– (चालीस)

प्रथम संस्करण : श्री रामनवमी, अप्रैल १९९३

प्रकाशक : कर्मनिकेतन प्रकाशन,
गणेश चौक
छिन्दवाड़ा (मध्यप्रदेश)
४८०००१

वितरक श्रीमती शान्तिदेवी गुप्ता

मुद्रक छाया प्रेस
८/२०८, आर्यनगर
कानपुर–२

आदरणीय

डा० जगदीश गुप्त

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

प्रस्तुत गद्य कल्प गद्य-विधाओं पर लिखे गये कतिपय लेखों का संकलन है। निगमी वर्गीय वयोवृद्ध कवि/पत्रकार श्रीरामनाथ जी गुप्त ने इस पुस्तक का दक्षतापूर्ण अवलोकन किया है और अपनी कर्मठता का परिचय देकर हमें कृतज्ञ किया है। साथ ही भाई श्री क्षितिज कुमार गुप्त ने बड़ी तत्परता के साथ इसका मुद्रण किया है। अतः वे भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

—प्रकाशक

विषय-अनुक्रम

अवतरणिका

मैंने, जब गुलाब की कलम लगाई थी, तब अनुमान न था कि यह एक घने पौधे के रूप में, अनेक सुर्ख लाल गुलाब की सुगन्ध से भर देगी और मुकुलित कलियां सहज सात्विक आनन्द से भर, पूर्वानुमानित व धना का स्वरूप ले लेगी। सोचा था फूल लगें, आशंका थी कि कलम लगती है या नहीं। पूर्वानुमान से परे आज और भी गमला पौधों में, पल्लवित पुष्पों को देख सौन्दर्य-गन्ध से भर देने का अनुपम सुख मिल रहा है। नेत्र उस अपूर्व सौन्दर्य को अपलक निहारते हैं। नासिका को भी सजग कर उनकी सुगन्ध, सौरभ से सराबोर कर, प्रेरणा प्रदान करती है, कानों-द्वारा अव्यक्त शाश्वत संगीत श्रवण कर लेने को बाध्य कर रहा है। अन्तस्तल में छाया ऐसा सुख अपने लिए ही रखूं तो अनुचित होगा। अतएव अपने परिवार से पड़ोस तक और पड़ोस से मित्रों के मध्य तक उसे बिखेर देने में ही परम शान्ति मिलेगी—ऐसा आत्मविश्वास हृदय में पनप रहा है।

शब्द और अर्थ की अभिन्नता शाश्वत है। शरीर और आत्मा से जीवन और जगत को सम्बन्धित देखा जाता है। ऐसे लम्बे समय की असंकलित रचनाओं को पुस्तकाकार देखने की इच्छा बनी रही, अतः यह मेरा दीर्घकालिक गद्य-विधा-कल्प तुम न ग्रहण करोगे—मैं ऐसा सोच भी नहीं सकता।

निबन्ध की शास्त्रीय मर्यादा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में निबन्ध नामक एक अलग साहित्यांग है। इन निबन्धों में धर्म-शास्त्रीय सिद्धान्त की विवेचना का ढंग यह है कि 'पहले पूर्व पक्ष में ऐसे बहुत से प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं, जो लेखक के अभीष्ट सिद्धान्त के प्रतिकूल पड़ते हैं। पूर्व पक्ष वाली इन शंकाओं का एक-एक करके उत्तर पक्ष में जवाब दिया जाता है। सभी शंकाओं का समाधान हो जाने के बाद उत्तर पक्ष के सिद्धान्त की पुष्टि में कुछ और प्रमाणों का निबन्धन

होता है, इसीलिए उन्हें निबन्ध कहते हैं।" वर्तमान काल में सोद्देश्य और सार्थक साहित्य वही होगा, जिससे ज्ञानवर्धन या स्वस्थ मनोरंजन हो, जो प्रभावी हो, व्यक्ति को आगे बढ़ने और उत्कर्ष की प्रेरणा दे, जिससे जनकल्याण समष्टि-हित-साधन हो। ऐसा लेखन ही अपने प्रमुख गुणों के कारण हमेशा जीवन्त बना रहेगा— ऐसी मान्यता है।

कुछ सम्भावनाएं निष्प्रयोजन समझी जा सकती हैं, किन्तु लोक-जीवन के गहरे सम्पर्क से गठित निबंध या गद्य विधा का चयन, विविध विशिष्ट शैलियों में भावात्मक, कथात्मक, वातावरणात्मक बिम्ब, निबंध के चित्र और विषयमूलक विशिष्ट सीमानुशासन में उभर रहे हैं। जिज्ञासा का पैनापन, भावुकता को सम्बल जरूर देता है। वैचारिक शृंखला सम्बद्ध भाव को व्यंजित विकसित करती चलती है। नव प्रश्न मूल्य का उपस्थित होता है। शब्द संवेदना, अनुभव और रूप-वैविध्य समय की जटिलता के साथ सजग, जीवनादर्श की सम्भावनाओं का खोजना-बताना चल रहा है। मूल्यांकन के घेरे में मूल्यों पर विचार कर, उठते भावों को कैसे रोका जा सकता है। मेरे आसपास, छोटे-बड़े प्रसंग उपस्थित होते हैं, तब उन विचारों का क्रम-चिन्तन उसे एक रूप देना चाहते हैं। ऐसे रूपों को, मैं अपने ढंग से लिख गया हूँ। मेरी यह सर्जनात्मक विकलता और सार्थकता, लेखन का यह नयापन, गहन चिन्तन, मनन, अध्ययन का फल भी हो सकता है। स्थायी या अस्थायी चिन्तन मन को प्रभावित करता है। देश और समाज को सम्भवतः दिशा भी देता है। अतः उनकी सार्थकता तो अच्छे लगने और सम्भवतः बार-बार पढ़ने की इच्छा जाग्रत करने में है। तर्क या गुण से अपने-आप को अलग रख और प्रसंगानुसार लिखते रहना ही अपना कर्तव्य समझा। पर मैं यह कहूँगा कि जहाँ सुई की जरूरत होगी उसका महत्व होगा और जहाँ तलवार की आवश्यकता, उपयोगिता होगी, वहाँ उसका महत्व बढ़ जायगा। रहीम का यह कथन सर्वथा उपादेय है—

"रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि,
जहाँ काम आवे सुई कहा करै तरवारि।

अतएव उक्त प्रसंग से मैं अपने सामयिक रमणीय संकल्प-प्रसू प्रसादक भव्य अभिव्यक्ति को अपने ढंग से रूप और वस्तु को एकाकार करने का यह एक प्रयास मात्र है। अपने-अपने औचित्यानुसार रूप और वस्तु आपस में मिल कर एकाकार हों, तो यह रचनाकार के लिये महत्व रखेगा।

"शैली विचारों का आभरण है, एक सादा पहनावा है।' यह भी सत्य है कि "शैली ही व्यक्ति है।' दीर्घकाल तक— कब कौन सी धारणा अभिव्यक्त हो, प्रमुदित रंग भरती रहे— यह रचनाकार की अपनी सूझ-बूझ पर निर्भर है। वैयक्तिक गुणों को भी मनन शैली माना जाय तो यह भावनाओं के रंग, इस बिखरी-बिखरी सुदृढ़ किरणों को प्रकृति में घुल-मिल कर नये रूप में रंग देती है। यह रचना आत्मा-भिव्यक्ति व्यंजित होकर लालित्य बिखेर देती है। अपने इन आधकारिक प्रसंग की चाल का गद्य विधाओं के रूप में आपके मन को टटोलने, गुद-गुदा देने और कुछ सोचने का अवसर देने का एक प्रयास है।

इस संकलन का कैसा स्वागत होता है —यह जानने की उत्सुकता सदैव बनी रहेगी।

सधन्यवाद

होलिका—
८ मार्च, १९९३

ब्रजमोहन गुप्त 'इन्द्रनारायण'

समस्यात्मक

- हिन्दी-प्रयोग पर चिन्तन
- बाल शिक्षा की

हिन्दी-प्रयोग पर चिन्तन

भारत में देशभक्तों की देशप्रेम की परम पावन गंगा, जिसमें उनकी अन्तरात्मा स्नान कर पवित्र हुई, जन्मभूमि के प्रति पावन निष्ठा जगा देती है—

"देश-प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है, असीम त्याग से विलसित,
जिसकी दिव्य रश्मियाँ पाकर, मनुष्यता होती है विकसित ।।"

जिस धरती में लेटे, बड़े हुए जिसकी गोद में आराम-निवास । तन आभास मिला, मिलता रहा, जिसने हमें चलना-रहना-सोना सिखाया था, उसकी सेवा करना हमारा परम कर्तव्य है। माता धरती है। मातृभाषा एक शक्ति है। प्रथम सोचने वाली चितवन है। अपने देश-परिवेश में इसे दोयम स्थान देने वाले हम ही भारतवासी हैं। अंग्रेजी के प्रति मोह-स्वार्थ उसका प्रभाव बढ़ा देता है। ऐश्वर्य या रौब गालिब करने के लिए, हम हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी में बोलना बड़प्पन समझते हैं। सच तो यह है कि भारतीय परिवेश में रह कर अंग्रेजी का महत्व देते रहना और हिन्दी को दोयम बना देना हमारे इन्हीं वर्गों का काम है फिर वे चाहे सामान्य वर्ग के पत्रकार हों या प्राध्यापक अथवा उच्च अधिकारी वर्ग, व्यापारी या आला दर्जे के नेता ।

भारत का यह निर्माण एक ओर तो औद्योगिक क्रान्ति ला रहा है, तो दूसरी ओर भयंकर भ्रान्ति दे रहा है। परन्तु भ्रान्ति तो अंग्रेजी कार्य व्यवहार से उत्पन्न होती है।

भूमि से, धरती से कुछ ऐसी अटूट आत्मीयता रहती है जो भ्रान्ति के निवारणार्थ कहने-करने को प्रेरित करती है। आज सन्धि-काल में कुछ भारतीय वर्गों में भ्रान्त धारणाएँ जड़ जमा चुकी हैं। नेता अधिकारी व्यापारी, कुछ अल्पसंख्यक—जिनका जन्म इस पावन माटी में हुआ यहीं का अन्न-धन ग्रहण कर धनीभूत हुए, संयम को धन के

भाषी हुए, अपनी भारतीय भाषा का प्रयोग करने से हीनता का अनुभव करते हैं और बहुत खुश होकर बड़प्पन दिखाने का प्रभाव डालने की दृष्टि से, अंग्रेजी में बात करते हैं, जैसे सब भारतीयों की अपनी भाई बहनों-भाषा नहीं है, जन्म से ही घुट्टी में अंग्रेजी उन्हें पिला दी गई है। ऐसे सारे अंग्रेज और राजनेतागण अंग्रेजियत की चादर ओढ़ बैठे हैं।

भारत में भारतीयों से जो कहा-सुना जाये, भारतीय भाषा में ही कहा-सुना जाय, ताकि भारत के निवासी परस्पर सम्पर्क में आकर समता-एकता के सूत्र में आबद्ध हों। हिन्दी के प्रसार में रुकावट का मुख्य कारण निष्ठा का अभाव, भाषागत मानसिक धारणा तथा जन-सहयोग की भावनात्मकता का अभाव है।

आजकल अनुकरण विवेकहीन होगया है। अन्धानुकरण न कभी कल्याणकारी हुआ है और न होगा। जरा समझो। जब हमारे घर की, परिवार की, समाज की, अपने बीच के लोगों को निकटता, सम्पर्क का माध्यम अपनी भाषा है, तब हम क्यों विदेशी भाषा का आश्रय ले कर प्रयोग करें और करायें? हिन्दी माध्यम के स्थान पर कान्वेन्ट शिक्षा की ओर अब सभी स्तरों के लोगों में आकर्षण झुकाव व ध्यान पाया जा रहा है। इसका भावी फल क्या होगा? इस अंधानुकरण का कौन कैसे समझायेगा?

हमें अपनी भूमि को नहीं भूलना चाहिए। ठीक इसी प्रकार बालक को अपना मातृभाषा (भारतीय भाषा) की महत्ता और पूर्ण शिक्षा देना आवश्यक होगया है। आधार तैयार होने के बाद जितनी ज्यादा भाषाएं वे ग्रहण करने की क्षमता रखते हों, उनको सिखाये जाने में कोई नुकसान नहीं है। बिना आधार भाषा के अंग्रेजियत सभ्यता की ओर अज्ञानतावश झुकाव न केवल भावी पीढ़ी के लिये हानिकारक है, बल्कि देश के भविष्य व चरित्र के लिए भी अकल्याणकारी है। वह बाल-मनोभावों पर बलात राष्ट्रीय भावबीज वपन न हो पाने देने की गहरी चाल है और राष्ट्रीय प्रेम जागरण में अवरोधक है।

की जो गिरावट दिखाई दे रही है उसका प्रभाव हमारे देश के लिए अच्छा नहीं कहा जा सकता। कल तो गलत होगया गलत चिन्तन हुआ, उसका परिणाम हम आज भोग रहे हैं। आज जो गलत चिन्तन अपनी अहम भूमिका निभा रहा है, आने वाले समय के लिए वह कभी ठीक न होगा। इसके परिणामस्वरूप खेल-जगत में गिरावट, व्यापार में हानि और सबसे बड़ी गिरावट तो भारतीयों के आचरण में आई है। यह औद्योगिक क्रान्ति और भारतीय आचरण का सविकास है, जिसमें भाषा की अहम भूमिका होती है। जिसका जैसा वातावरण होता है उस देश के निवासियों का रहन-सहन वैसा ही होता है, उनकी विचारधारा उसके ही अनुरूप होती है। बम्बई-मद्रास कलकत्ता-दिल्ली ही भारत नहीं है,—भारत तो गावों, छोटे-छोटे नगरों में बसा है। यदि वहाँ भी कान्वेंट प्रणाली, आर्थिक दान या रूढ व्यापक रूप में चली, तो निश्चित मान लीजिए कि भारत मानसिक दासता से मुक्त नहीं होगा और वे भारतीय आचरणहीन संस्कृति में विचरा करते करेंगे। यह भोलापन अवकचरापन न उन्हें वास्तविक अंग्रेजी सभ्यता ही सिखा पायेगा और न ही भारतीय सभ्यता। कम से कम ऐसे समय व्यावहारिकता को बढ़ावा देना ठीक रहेगा।

जो भारतीय ईसाई या मुसलमान बने, वे आज भी भ्रमित हैं। उनका अन्धानुकरण उनका और उनकी सन्तान के साथ न्याय नहीं करेगा। राष्ट्र और राष्ट्रीयता के साथ भारतीय परिवेश में भाषा के साथ दोगली भाषा-व्यूह-रचना दुर्भाग्यपूर्ण होगी।

भारतीय संस्कृति का बोध हमें पीछे नहीं ले जाता, वातावरण के अनुकूल भारतीय आचरण-वाणी-सभ्यता-शिष्टाचार मूर्खतापूर्ण नहीं है न वह गंवारू या सभ्यता-विहीन है, किन्तु यदि ऐसी धारणा है तो सचमुच में यह अधिकांश व्यापारिक पतन, चारित्रिक पतन शारीरिक पतन, खेल-कूद के पतन और उत्पादन में गिरावट का युग होगा। यदि भारत में बोली जाने वाली भाषा, संस्कृति और हिन्दी को हम नहीं अपनाते और भारतीय परिवेश में धर्म-कर्म-आचरण न की शिक्षा

वातावरण नहीं बनाते, तो देश को भयंकर दुर्भाग्य से गुज़रना होगा। फलतः हिन्दी को उत्तम स्थिति में मुक्त करना होगा।

भारत में भारतीय भाषा के माध्यम से गुरुकुल-प्रणाली भावी भारत को आचार-विचार-चिन्तन में समृद्ध बना सकता है, अन्यथा भारतीय आचरण खोखला होगा। यथास्थान शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया जाना उचित है—हमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की इन भावनाओं का ध्यान रखना चाहिए—

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल॥"

भारतीय दूरदर्शन पर चिन्तन किया जाना नितान्त आवश्यक होगया है। जो यह के मद में बढ़ रहा है, वह भारतीय भाषाओं के अनुपात में विषमता दिखा कर भारतीय भावनाएँ ऊँचाई को कम आँकता है।

राष्ट्रीय कार्यक्रम निर्धारित कार्यक्रम (नेटवर्क) प्रातःकालीन प्रसारण (मार्निंग ब्राडकास्टिंग) कार्यक्रम में जिस रूप में अंग्रेज़ी थोपी जा रही है, उससे तो ऐसा आभास होने लगा है कि सम्पर्क-भाषा का अंग्रेज़ी के रूप में प्रसारण, भारतीय परिवेश में अंग्रेज़ी को ज़्यादा प्रमाणित करने का षड्यन्त्र है। इस षड्यन्त्र के घातक परिणाम हो सकते हैं। अन्य भाषा-भाषी केन्द्रों में अधिकांश कार्यक्रम हिन्दी में प्रस्तुत कराया जाना चाहिए, ताकि आज नहीं तो कल वे अनुभव करेंगे और अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी को सीखेंगे, हिन्दी को अपनायेंगे, जिससे राष्ट्रीय भावना व धारणा स्थापित होगी। यह धारणा तो निकाल ही देना चाहिए कि हिन्दी लादी जा रही है या वे जब तक न अपनायें तब तक हिन्दी को द्वितीय स्थान पर ही बना रहने दिया जाये, इस तरह हिन्दी को जो दर्जा मिल जाना चाहिए था, भविष्य में भी नहीं मिल पायेगा। सशक्त प्रहार कर अपनी दृढ़ निश्चय-शक्ति का परिचय दिया जाना सही कदम होगा। हमारी राष्ट्रीयता चुनौती दे रही है, अपनी संस्कृति को बचाये रखने की।

जिन बातों, भारतीय पुरातात्त्विक इतिहास तथा कला का दर्शन कराया जाता है—यह बहुत अच्छा है, पर अंग्रेजी में बोले जाने से कितने भारतीय इसे समझ पाते हैं और कितने देखते-देखते उठकर चले जाते हैं या अपना सेट बन्द कर देते हैं— फिर क्या मतलब रहा इस दर्शन का जिसका विवरण अंग्रेजी में दिया जा रहा हो ? दूरदर्शन को भी चिन्तन करना चाहिए। भारतीय परम्परा की रक्षा करनी चाहिए भारतीय भाषा का प्रयोग यथासम्भव करना चाहिए। अंग्रेजी के स्थान पर स्पष्ट विवरण हिन्दी में व्यक्त किये जाने चाहिए देवनागरी लिपि का प्रयोग अधिकतम करना चाहिए। आखिर दूरदर्शन से सम्बन्धित वर्ग सोचें—वह किस देश में दिखाया जा रहा है ? उस देश की भाषा कौन-सी है ? कितने प्रतिशत लोग अंग्रेजी समझते या पढ़ते हैं ? मैं सोचता हूँ कि उसका प्रतिशत अधिक नहीं हो सकता। भले हो भारतीय सामने कुछ प्रदेशों में हिन्दी के स्थान पर अंग्रेजी पढ़ते समझते या लिखते हों, तब भी हिन्दी का प्रयोग कराया जाना, किया जाना चाहिए। भारतीय वातावरण में भारतीय भाषा जो आधार बनाती है, वह इस रूप में विदेशी भाषा कदापि नहीं बना सकती। अब देश के निवासियों को दिखाया-सुनाया जा रहा है तो भारतीय सांस्कृतिक वातावरण भाषा को आधार मानकर दूरगामी परिणामों पर विचार कर ही यथासम्भव हिन्दी बोली में दिखाया जाना चाहिए। देवनागरी लिपि का प्रयोग अधिक किया जाना चाहिए, तभी गहरी सतरंगी भाषायी धारा की चाल से मुक्ति सम्भव होगी। यह निश्चित रूप से मानवीय कल्याण का शुभारम्भ होगा। समस्त भारतवासी के जीवन परस्पर स्नेहसूत्र में बँधकर राष्ट्रीय आचरण बनेगा। जो ह्रास देखा जा रहा है, उसे नकार उसमें पूरी तरह से आत्मीयता का प्रवेश कर उत्थान का पथ दिखाई देगा और मंगल-भावना से चिन्तन को जो दिशा मिलेगी, वह परम फलदायी होगी, कल्याणकारी और सुयश देने वाली होगी।

हिन्दी का भविष्य भारतीयों का भविष्य है। वर्तमान में हिन्दी दोयम स्थिति में है ... स बोध या धारणा है कार्य-व्यवहार को

इसका निर्वाह करना न केवल शासन का कर्तव्य है, अपितु प्रत्येक भारतीय का नैतिक कर्तव्य हो जाता है। राष्ट्रीय गौरव सर्वोपरि होना चाहिए। हिन्दी का मान-सम्मान राष्ट्रीय गौरव माना जाना चाहिए। इस पर गर्व किया जाना चाहिए, अन्यथा सभी भूलने को तैयार रहना चाहिए। मातृभाषा ही राष्ट्रीय चरित्र का आधार है जो अनेक रूपों में प्रकट होता है। आशा व आस्था की भावना का आशीष होना, भावनाओं को राष्ट्रीय चरित्र में ढालना, हिन्दी का प्रयोग सदा करना, प्रभावी, सम्मानजनक तथा गौरवमयी परम्परा है। इसे राष्ट्रीय स्तर पर सामान्य जनजीवन में बढ़ावा मिलना ही चाहिए।

बात शिक्षा की

कुछ ही दिनों में शिक्षा जगत की संस्थाएँ खुल जायेंगी। कुछ पालक अपने होनहार चिरञ्जीव कुमारों या आयुष्मती कन्याओं के प्रवेश हेतु बहुत चिन्तित हो सकते हैं। चिन्तित होना स्वाभाविक है, क्योंकि शिक्षा मानव की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। अभीष्ट शिक्षा के द्वारा ही अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को पाया जा सकता है। इस शिक्षा वर्ग में चिन्ता का विषय यही है कि कैसे गुरुकुल जैसी आदर्श शिक्षा कुमार और कुमारियों को मिले ताकि वे इस समय अपने समाज एवं राष्ट्र के एक उपयोगी अंग बन सकें। यह तो स्पष्ट ही है कि किसी राष्ट्र, देश, युग और समाज की व्यवस्था की सुरक्षा वे ही कर सकते हैं जो आज बालक हैं कल युवा होंगे और फिर प्रौढ़त्व को प्राप्त होंगे। वे ही राष्ट्र की शक्ति बनेंगे और भविष्य का निर्माण करेंगे। फलतः उनकी उत्तम शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था सुचारु रूप से होनी चाहिए।

यह भी स्पष्ट है कि शिक्षा का उद्देश्य मात्र भौतिक उन्नति नहीं है। उसका लक्ष्य भौतिक समृद्धि के साथ-साथ शाश्वत सुख एवं आनन्द पाना है। आज आधुनिकतम सुशिक्षा के लिये खोज व प्रयोग का दौर चल रहा है। यह प्रयोग मात्र एक प्रयास है, जो शिक्षा के स्वरूप का प्रश्न उपस्थित करता है। आज प्रश्न यह है कि छात्रों को कैसी शिक्षा दी जाये, ताकि उनका जीवन समुन्नत हो सके।

राष्ट्रीय शिक्षा में प्रत्येक का अपना उचित और स्वाभाविक स्थान मिल सके—ऐसा प्रयास होना चाहिए। ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा की खोज क्या हो चुकी है या मात्र उसका स्पर्श भर किया गया है। ऐसा आधार क्या शाश्वत शान्ति, मुक्ति, ग्राह्याग्राह्य निर्णय, सुख-दुःख व आनन्द का विवेचन कर जीवन में उतारा जा सकता है? क्या ऐसी आधारित शिक्षा मूल्य-परकता का ज्ञान करा सकती है? ऐसी स्थिति में

शैक्षणिक विचार स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन व कथन को ध्यान में रखना होगा और चारित्रिक शिक्षा पर बल दिया जाना सार्थक होगा। उन्होंने कहा था— "सभी शिक्षाओं का, अभ्यासों का उद्देश्य मनुष्य-निर्माण ही है। जिन अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छा-शक्ति का प्रवाह और आविष्कार संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम शिक्षा है।"

"सा विद्या या विमुक्तये"

"साहित्य संगीत कला, विहीन साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीन।" अर्थात् साहित्य, संगीत और कला से विहीन व्यक्ति सींग-पूंछ-हीन पशु है। संभवतः अतीत में कुलपति-पालित-संरक्षित शिष्य वैयक्तिक-राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे। वे स्वावलम्बी भी हो सकते हैं। वे उच्च कोटि के ज्ञानी सदाचारी भी रहे होंगे, राष्ट्र के गौरव भी रहे हों, किन्तु आज इसकी विपरीत स्थिति क्यों? जब कि इस युग में अनेक साधन उपलब्ध हैं। ऐसे साधन, जिनसे समय की बचत के साथ और अधिक उपयोगी शिक्षा सुलभ हो सकती है, तब फिर शिक्षा-सत्र प्रारम्भ होने ही प्रवेश को लेकर समस्याएं मुंह बाये खड़ी हो जाती हैं तब भी जो आत्मिक सन्तोष बालक को मिलना चाहिए, नहीं मिल रहा है। भारी भरकम रकम दी जाने पर भी फीका माल मिल रहा है छात्र से, शिक्षण संस्थानों से, शिक्षा नीति से, जो मिलना चाहिए क्या यह मिल रहा है? छात्र स्वावलम्बी नहीं हैं। वह अपनी वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। दिशाहीन होकर आये दिन नये विवाद उत्पन्न होते हैं। उनके चरित्र में राष्ट्रीय चरित्र कैसे उज्ज्वल हो सकता है?

वे न तो शुद्ध बोल सकते हैं और न ठीक कर अपने विचार ही रख सकते हैं, फिर पढ़ना-लिखना भी कैसे सहज रूप से सकता है? इस हेतु जिस शिक्षा का आधार ही मातृभाषा न हो, वह क्या पाश्चात्य पुतला खड़ा कर हमारे देश को पदर्शनी मात्र नहीं बनायेगी? जीवन और जगत का गहरा सम्बन्ध है, जिससे सामाजिक समायोजन होता है।

बात शिक्षा की

कुछ ही दिनों में शिक्षा जगत की संस्थाएँ खुल जायेंगी। कुछ पालक अपने होनहार चिरञ्जीव कुमारों या आयुष्मती कन्याओं के प्रवेश हेतु बहुत चिन्तित हो सकते हैं। चिन्तित होना स्वाभाविक है, क्योंकि शिक्षा मानव की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों के सर्वांगीण विकास के लिये आवश्यक है। सर्वोत्कृष्ट शिक्षा के द्वारा ही अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को पाया जा सकता है। इस शिक्षा युग में चिन्ता का विषय यही है कि कैसे गुरुकुल जैसी आदर्श शिक्षा कुमार और कुमारियों को मिले ताकि वे इस समय अपने समाज एवं राष्ट्र के एक उपयोगी अंग बन सकें। यह तो स्पष्ट ही है कि किसी राष्ट्र, देश, युग और समाज की व्यवस्था की सुरक्षा वे ही कर सकते हैं जो आज बालक हैं, कल युवा होंगे और फिर प्रौढ़त्व को प्राप्त होंगे। वे ही राष्ट्र की शक्ति बनेंगे और भविष्य का निर्माण करेंगे। फलतः उनकी उत्तम शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था सुचारु रूप से होनी चाहिए।

यह भी स्पष्ट है कि शिक्षा का उद्देश्य मात्र भौतिक उन्नति नहीं है। उसका लक्ष्य भौतिक समृद्धि के साथ-साथ शाश्वत सुख एवं आनन्द पाना है। आज आधुनिकतम सुशिक्षा के लिये खोज व प्रयोग का दौर चल रहा है। यह प्रयोग मात्र एक प्रयास है, जो शिक्षा के स्वरूप का प्रश्न उपस्थित करता है। आज प्रश्न यह है कि छात्रों को कैसी शिक्षा दी जाये, ताकि उनका जीवन समुन्नत हो सके।

राष्ट्रीय शिक्षा में प्रत्येक को अपना उचित और स्वाभाविक स्थान मिल सके—ऐसा प्रयास होना चाहिये। ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा की खोज क्या हो चुकी है या मात्र उसका स्पर्श भर किया गया है। ऐसा आधार क्या शाश्वत शान्ति, मुक्ति, ग्राह्याग्राह्य निर्णय, सुख-दुःख व आनन्द का विवेचन कर जीवन में उतारा जा सकता है? क्या ऐसी बात [illegible] शिक्षा [illegible] करा सकती है? ऐसी स्थिति में

शैक्षणिक चिन्तक स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन व कथन को ध्यान में रखना होगा और चारित्रिक शिक्षा पर बल दिया जाना सार्थक होगा। उन्होंने कहा था – सभी शिक्षाओं का अभ्यासों का उद्देश्य मनुष्य-निर्माण ही है। जिस अभ्यास के द्वारा मनुष्य की इच्छा-शक्ति का प्रवाह और आविष्कार संयमित होकर फलदायी बन सके उसी का नाम शिक्षा है।"

"सा विद्या या विमुक्तये"

"साहित्य, संगीत, कला, विहीन साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीन।" अर्थात साहित्य, संगीत और कला से विहीन व्यक्ति सींग-पूछ-हीन पशु है सम्भवतः अतीत में कुलपति-पालित-संरक्षित शिष्य वैयक्तिक-राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे। वे स्वावलम्बी भी हो सकते हैं। वे उच्च कोटि के ज्ञानी सदाचारी भी रहे होंगे, राष्ट्र के गौरव भी रहे हों, किन्तु आज ऐसी विपरीत स्थिति क्यों? जब कि इस युग में अनेक साधन उपलब्ध हैं। ऐसे साधन, जिनमें समय की बचत के साथ और अधिक उपयोगी शिक्षा सुलभ हो सकती है, तब फिर शिक्षा-सत्र प्रारम्भ होते ही प्रवेश को लेकर समस्यायें मुंह बाये खड़ी हो जाती हैं। तब भी जो आत्मिक सन्तोष बालक को मिलना चाहिए, नहीं मिल रहा है। भारी भरकम रकम दी जाने पर भी फीका माल मिल रहा है छात्र से, शिक्षण संस्थानों से, शिक्षा नीति से, जो मिलना चाहिये क्या वह मिल रहा है? छात्र स्वावलम्बी नहीं हैं। वह अपनी वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। दिशाहीन होकर आये दिन नए विवाद उत्पन्न होते हैं। उनके चरित्र में राष्ट्रीय चरित्र कैसे उज्ज्वल हो सकता है?

वे न तो शुद्ध बोल सकते हैं और न व्यक्त कर अपने विचार ही रख सकते हैं फिर पढ़ना-लिखना भी कैसे सहज रूप ले सकता है? इस हेतु जिस शिक्षा का आधार ही मातृभाषा न हो, वह क्या पाश्चात्य पुतला खड़ा कर हमारे देश को प्रदर्शनी मात्र नहीं बनायेगी? जीवन और बचत के बहरा है, सबसे असमाप्त होता है

जो जीविकोपार्जन की क्षमता उत्पन्न कर सकता है तथा आत्मादर्श और उसका महत्व स्थापित कर अध्यात्म और मानवीय मूल्यों को प्रमुख स्थान दे सकता है। अंग्रेजी परस्त धारणा भारतीय शिक्षा को कैसे रीढ़ बन सकती है? भारतीय परिवेश में भारतीय आचार-व्यवहार, संस्कृत-हिन्दी को, दोयम मानकर उनकी उपेक्षा कर, मानव-मूल्यों का पतन ही होगा। नव १०+२+३ शिक्षा योजना [नई शिक्षा योजना] सम्भवतः राष्ट्रीय चरित्र के लिए वैयक्तिक विकास की अच्छी रीढ़ न बन जाय। इसका कारण परीक्षा भी है। परीक्षाओं की आन्तरिक व्यवस्था स्वार्थ युक्त दोषपूर्ण व्यवस्था है। केन्द्रीय मूल्यांकन में सही मूल्यांकन नहीं होता। अधिकतर उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकित किए जाने की होड़ में उत्तर पढ़े नहीं जाते—पृष्ठ पलट जाते हैं। सम्बन्धित विषय के अधिकारी अध्यापकों को मूल्यांकन नहीं सौंपा जाकर, अन्य विषय के, अल्पज्ञ तथा नीचे श्रेणी के लोगों से भी मूल्यांकन कार्य कराना, छात्र हित तथा शिक्षा नीति की सफलता में बाधक है। शिक्षा-मण्डल में कुछ ऐसे भी धूर्त सदस्य बनाए गये हैं, जो भ्रष्ट हैं। छात्रों को शासन द्वारा दी गई बृत्तियाँ ही खा जाते हैं व गलत रीति कर संस्था और मण्डल को धोखा देते हैं। तब राष्ट्रीय चरित्र कैसे बन सकता है? मण्डल भी अपनी प्रतिष्ठा शासन के दबाव से बचाने के लिए गिरते परीक्षा परिणाम को और कुछ प्रतिशत बढ़ाने में लगा रहता है। क्या यह सात्विक प्रवृत्ति है?

ऐसी स्थिति में सही मूल्यांकन के प्रति आस्था नहीं रह गई है। अध्ययन-अध्यापन में गिरावट आई है। राष्ट्रीय नीति विकास के लिये बनाई जाती है। शिक्षा जगत का तत्व जिसका चरित्र ही आज दोषपूर्ण हो गया है, कैसे इस राष्ट्रीय "नीति" को फलित होने देगा। अच्छी शिक्षा संस्थायें इनी गिनी ही हैं जहाँ पालक अपने पुत्रों और दुहिताओं को प्रवेश दिलाने में हर तरीके अपनाता है। शिक्षा में सहनशीलता प्राण शक्ति है। इसमें संकल्प व अध्यवसाय आवश्यक है। जब तक शरीर चेतना विस्तृत नहीं होगी, तब तक बाह्य दूरी तक, वस्तुओं को देखने, सुनने, सूँघने व स्पर्श करने की सही एकाग्रता का विस्तार नहीं हो

सकता। अभ्यास का अभाव बालकों की शिक्षा को पूरी तरह डस रहा है। उसका विष बढ़ रहा है, बिना अभ्यास के लक्ष्य पा लेना असम्भव है क्योंकि अभ्यासकाल में सामान्य जीवन में, मानसिक चेतना का विकास होता है। मानसिक विकास मस्तिष्क की बनावट में बड़ी बौद्धिक शिक्षा परिवर्तन लाती है, जो सीमा विशेष तक बढ़कर समृद्ध और यथार्थ से जीवन को अपनी अनुभूतियों को मूर्त कर सकती है। मनोविकास शिक्षा, मन की शिक्षा जो मानसिक विकास के लिए आवश्यक है उसे पूर्ण कर सकती है। एकाग्रता की क्षमता मन को व्यापक भव्य और समृद्ध बनाने में विकसित करने में, अहम भूमिका निभाती है। व्यक्ति की अनन्त सम्भावनाओं को, विचार-तत्व के मन-रूप धारण करने के लिए निजी संकल्प जाग्रत कर निश्चय के साथ जीवन को आगे बढ़ाने में क्या सहायता नहीं मिलेगी, अवश्य मिलेगी। अपना स्वामी अपने आप तब बना जा सकता है, जब संकल्प को जीवन बनाने में— हम जो कुछ करते हैं, और जो कुछ विचार करेंगे, उसको दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित करें। मनुष्य, सरकार, व्यवस्था बनाने वाले, पालक वर्ग आदि स्वार्थपरता त्याग कर अहम् से मुक्त हो जाएं, तो यही आध्यात्मिक प्रयास स्थापित होगा, कल्पना से उठकर, अनुभव पाकर समान स्वरूप होगा और व्यक्ति-व्यक्ति में सहज-सहज प्रेम का मार्ग स्थापित करेगा। इससे हमारे समाज की, राष्ट्र की विजय-यात्रा प्रारम्भ होगी। शिक्षा समारम्भ से, जो सर्वत्र एक बेचैनी असन्तोष, भाग-दौड़ है, उस पर काबू पाने के लिए प्राण-शक्ति और सहन-शक्ति के साथ जूझना होगा तथा उचित दिशा के लिए प्रयास करना होगा।

व्यंगात्मक—

- चुनाव ! तुम्हारा स्वागत—
- बड़ी लाइन का चक्कर—
- किस्सा दादी का—
- काट सके तो काट

चुनाव, तुम्हारा स्वागत !

बसन्त की भाँति आ रहे चुनाव, तुम्हारा स्वागत है। तुम [illegible]वर्षीय होकर भी बीच-बीच में आया करते हो इसीलिए प्रजातन्त्र के प्रतीक—बड़े मूल्यों में, प्रत्येक दल, लिपे-पुते घरों की साफ-सुथरी दीवालों पर ललचाई दृष्टि रख तुम्हारे स्वागत के नारे लिखवाने को उत्सुक है। तुम्हारे स्वागत के लिए काफी चन्दा एकत्र कर लिया गया है। झण्डे, बैनर, जीपें आदि भी तुम्हारे स्वागत में जुट रहे हैं। मुद्रण कार्यालय प्रत्येक दल की 'महिमा' में गाये जाने वाले महाकाव्य के पर्चे छापने के लिए आतुर हो रहे हैं। परिषदों की श्रेष्ठ कुर्सियाँ नये-नये व्यक्तित्व को आसीन कराने की गुदगुदी में मन-मग्न रही हैं। उन महान कुर्सियों पर बैठाये जाने के लिए चुनाव जीत-सम्राटों का स्वरूप [illegible] को तैयार है। जिस सम्राट की बढ़िया मत-रूपी माला होगी, उसे उस ढंग में चराया जायेगा। वरमाला के रूप में युवा-टीम तैयार है, अपमान और दबाव से नया 'रेस्ट' करने के लिए, नया [illegible] खोजने के लिए।

बरसात में सभी हरियाली में पुष्प-पौध को बढ़ाया जाता है, किन्तु बसन्त में वन-गली, बाग-बगीचे, घर-आंगन में वे पौधे खिल-खिला उठते हैं, यही उन्मुक्त हँसी प्रकृति की है हमारे अन्दर तक की। ग्रीष्म में तप चेहरे पर भी बसन्त—श्री खिल-खिला उठती है—तो चुनाव गावों में जीपों का हल्ला, बार-बार का कोहराम देखकर भोला-भाला शहरों पर हँस उठता है। वे भी मन ही मन कहते हैं—चुनाव आया और स्वार्थ दौड़कर मतलब गाँठने आया है। चुनाव भी किसी न किसी की बरात है। स्वागत करना ही है। चुनाव माहौल की बसन्ती चिड़िया अपनी 'बारी' के लिए "चुन लई" के लिए पुकार उठी है। इस उठती गुहार में निर्गुण सम्प्रदाय का बाबा कबीर लाक्षणिक और व्यंग्य की चोट [illegible] होकर बो[illegible] कहकर यह [illegible] है

रहा है कि हमारे खाली "पाकेट" भर जाओ ! चुनाव, तुम्हारा हार्दिक स्वागत !! व्यवसायी निर्माता समूह से "दलों" ने चन्दा ऐंठ लिया है। मूल्य-वृद्धि का कारण न होने पर भी उन्होंने मूल्य बढ़ाकर भारी दबाव हमारे सिर पर मढ़ दिये हैं। आम आदमी के चेहरे पर ये भाव पढ़े जा सकते हैं। विवश होकर सालते मन में आने वालों का स्वागत करने की परम्परा कैसे टाली जा सकती है। उपभोक्ता या निर्माता व्यवसायी पूँजीपति या गरीबों के मन में स्थापित करने से ठहर चुनौ, न कहने वाला भारी व्यथा कबीर की वाणी में कह जाते हैं—

माली आवत देखकर कलियाँ करें पुकार।
खिली-खिली सब चुनि लई, काल्हि हमारी बारि॥

कबीर के साथ ही यह लाक्षणिक प्रयोग, गद्य-लेखन से चिपका गया है। लाक्षणिक प्रयोग में असमर्थ होने पर भी, बहुतेरे नीम हकीम खतरे जान उससे चिपक जाते हैं। चिपके रहने में, उन्हें सुख की गहरी अनुभूति होती है। ऐसे प्रसंग में फँसते देख तुलसी–रत्नावली प्रसंग "सरेस" की तरह चिपक जाता है, परन्तु चिपकने की सार्थकता तक न पहुँचने पर हमें ऐसा चुभता है कि फिर आसक्त भी विरक्त हो जाता है। लाक्षणिक-अन्योक्ति फिर इतिवृत्तात्मक हो जाये तो (फिर) क्या ? चुनाव, तुम्हारी प्रकृति का भी समझा जा सकता है। रामकृष्ण की पहुँच तुम्हारे पार्श्व-व्यथ को अनुभव कर, जल्दी ही कोई सुधार चुनाव पद्धति में करेगा, ताकि पूँजी की रुकावट से मुक्ति मिले। मानसिक तनाव हल्का या सहन हो जाये।

मेरी श्रीमती जी बार-बार अपनी ही बात कहती है। काम पूरा कराने के लिए पीछे पड़ जाती हैं। ढाई-तीन वर्षीय गुड़िया भी मिश्री घोलकर अपनी प्यारी वाणी में "चलो ना" शब्द गाने जाती है। उसका यह क्रम उसे "पोहा, चाकलेट, मिठाई" मिलने तक बना ही रहता है। वह पापा से लिपट जाती है और "चलो ना बाबा !" की मनुहार करती बड़ी प्यारी लगती है। सूर-तुलसी के बाल-साहित्य की सार्थकता ढाई वर्षीया गुड़िया के भोलेपन में समझने लगती है देख

आलापन गाँवों में भी दिखाई देता है। मत" की कुटिल चालों में वह जल्दी फँस जाते हैं। चुनाव, तुम्हारा आयातित बन-मोर, शकुन्तला-सा छल रहा है। वे दुष्यन्त की तरह आकर, अपने दावे भूल जाते हैं। मुकर जाने की प्रकृति ने तुम्हारा महत्व कम कर दिया है। आगत के पीछे एक कष्ट भरा, गहराता उलाहना पनप रहा है। तुम्हारे स्वागत में होने वाली भव्य तैयारियाँ, भाषणों और जलसों से मुसीबत गरीबों को उठानी पड़ती है, लाभ पूँजीपति और निर्माताओं को मिलता है, आयोजकों को पद कुर्सी अर्थात प्रतिष्ठा मिलती है। यह न ना गया सत्य ऐसी विचारधारा है, जो अपने संस्कारों को झुठलाती है आदमी को अपनी जड़ों से काट देती है।

अरे भाई, चुनाव में चयन का जो भावबोध गहराता जा रहा है उसके कारण वाणी भी अन्दर से उठती आकांक्षा में चुनाव-प्रवाह में रंगहीन हो चिपक जाता है। यही चक्कर है–चिपकना जो एक लपलपा, लसीला पदार्थ है। गोंद की तरह या आधुनिक फेविकोल-सा चिपचिपा होता है। सारा समाज चिपकने की सार्थकता समझता है, इसलिए चिपचिपाहट में भी चिप-चिप ध्वनि को सुनकर, सारे समाज में भ्रष्टाचार को जड़ से उखाड़ने के कौशल करता है और शायद भ्रष्टाचार का प्रभाव उसे ही उखाड़ फेंकता है। देश का आचरण ऐसा चिपक रहा है कि सारा व्याकरण ही बदल गया है।

चुनाव! तुम्हारा भक्त मेरा मित्र हाथ जोड़कर प्रभु को दण्डवत करता है। प्रभु और भी पैदा हो रहे हैं, उन्हें भी वह प्रणाम करता है। हाथ जोड़कर निवेदित स्वर में कहता है कि चिपकना, चिपटना और जुड़ना कुछ अलग है। अलग-अलग सन्दर्भों में, अलग अर्थ-बोधक है, उनका प्रयोग भी अलग-अलग ढंग से होना चाहिए। तब भया मेरी उत्सुकता देखते ही जुड़ी भीड़ की तरह एकत्र हो जाती है। कल का खेलता-कूदता बचपन, यहां होने-होने अर्थ की गरिमा को समझने लगता है, और जुटाव की कुछ बातों की चिन्ता में प्रबन्ध करने में जुट जाता है। सामने की अर्थ-व्यवस्था पीछे के रास्ते राशि

जुटाने लगती है। ऐसे जोड़-तोड़ में विस्तृत अर्थ जुड़कर, तुम सभ्य बनते जा रहे हो। इस सभ्यता की नाम-दाम में दुरुपयोग की मान-सिकता तथा व्यक्ति और समाज में प्रतिष्ठित स्थान पाने की महत्त्वाकांक्षा गले से चिपट रही है। ऐसी विसंगतियों में यह देश कितने दिन जी सकेगा? क्या तुम्हारा, हर क्षण स्वागत करने का यही औचित्य है?

प्यारे ततारे मुझसे कुछ बिना रहा नहीं जाता। भावातिरेक में मैं चिपकना ही नहीं, चिपटना ही नहीं, अपितु उनके गले से लिपट जाता हूं। गहरा आलिंगन पाकर उसे गुदगुदी होने लगी है। पेटभर खाकर, चाँदनी रात्रि में "चीपो-चीपो" के स्वर कर्ण भेदकर, मस्ती में गाने की धुन भी उस सवार हो गई है। पर-दुःख का अधिकार भी, अपने ऊपर राग ने, उसे अधिकृत किया है। इसी तरह सम्या भाव-बोध, उसे सकर्मक भी बना देता है। डायरी में चिपकने या डायरी निकाल उसे चिपकाने, नोंक की भांति सिमटकर काव्य की कील ठोककर केवल जुड़ा रखना, यह नहीं सूझता। रचना पूरा पटकर ऐसे चिपकने, गले लिपटाने, उसे प्रायः कम ही देख पाता हूं।

अब मुझे भी समझ में यह आने लगा कि वह क्यों चिपटता जा रहा है। उस पर कुर्सी का तालमेल जीत रहा है, जैसे घोड़े की तरह, वह तांगे से चिपककर जुड़ गया है। दिन भर की दौड़ धूप गिड़गिड़ाते, विनम्र स्वर में उसे विजयी झण्डा गड़ा हुआ नजर आने लगा है। कितनी सीट पर अधिकार होगा—चुनाव, तुम्हारे स्वागत के पहले ही यह अंदाजा जाने लगा है। अब जब तुम आ ही रहे हो—तो कुर्सियों का बंटवारा भी हो जाये। कितनी कुर्सियाँ हस्तगत हो जायेंगी—साम, दाम, दण्ड, भेद को गले से लगा, उसे मक्खी की तरह कुर्सी से चिपटाने का मोह नहीं छोड़ रहा है। दिन भर बिकाऊ ढोर की भांति घूमते रहने के कारण वह सपने भी देखने लगा है। प्रत्येक नागरिक की मनोदशा एक ही सी पाई जाती है। सत्ता का कुर्सी से चिपकने की लालसा जाग रही है जो अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रख सकता वह मंत्री

बनने का अधिकारी नहीं है। आसक्त रहकर सावधान और सतर्क रहकर ही वह उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकता है।

बन्धु ! कबीर ने "सुनि लई" का आशय आज के नये सन्दर्भ में नहीं व्यक्त किया, अन्यथा तुम्हारी प्रक्रिया और उभरते स्वरूप का दख-कर कबीर साहब हंसते। तुम पर आसक्त होने, कुर्सी या सेन की प्रबल इच्छा-शक्ति को पहचानकर, बच्चों की तरह लिपटते, चिपट जाते। उन्हें भी लड्डू खाने का मानो ललचा रहा है। भारतीय जमीन पर अगर कोई हर जगह फल-फूल रहा है तो, बस वह चुनाव है। इस वातावरण में जीने का अलग आनन्द है। बच्चे पलते-पढ़ते चुनावी माहौल में आनाकानी हो जाने की अभिलाषा रखते हैं। स्वार्थ, दलदल व ... चरित्र में न जाने कब से डेरा जमाये हुए हैं। देश-हित सर्वोपरि होना चाहिए किन्तु कब से वह ओझल हो रहा है। स्वामी या शासक का खोखला चरित्र दोषों से उबर नहीं पाता। विलासिता में लिपटता रहता है। धर्महीन राजनीति फन्दे की तरह है जिससे चुनाव से जूझकर मुक्त होने से ही सार्थकता है।

हर शताब्दी नई सदी की बाट जोहती है। उसमें उसकी गहरी दिलचस्पी होती है। चुनाव ! तुम भी किसी मादक तत्व से कम नहीं, नशीले पदार्थ की तरह बुरी तरह से समाज में फैल रहे हो। दमित व छिपी महत्वाकांक्षायें, व्यक्ति के साथ जुड़कर सामाजिक, धार्मिक और प्रशासनिक, सौजन्य, सौहार्द को गले से चिपकाना, तुमसे ही सीख रहे हैं। अतएव आओ तो खुलकर आओ। तुम्हारा हार्दिक स्वागत होगा।

भारतीय भूमि-पुत्र, तुमसे चिपटकर गले मिल जाने को आतुर हैं ... चाहे डा... के रूप में तुम्हें वे 'फिट' करना चाहते हैं। सामाजिक दायित्व जुटा सकें—इसलिए वे तुम्हारे द्वारा लोगों की जिन्दगी सौंपना चाहते हैं। वे जानते हैं, तुम किसी 'पिया' से कम नहीं हो। 'जिसे पिया चाहे, वही सुहागिन'—बसन्त की भाँति पहले आओ और बसन्त के बाद ही जाना और हमें भी पिया की तरह सुहागिन कर जाना। चुनाव आओ। तुम्हारा स्वागत—सहस्र बार स्वागत !!

बड़ी लाइन का चक्कर !

पत्नी के द्वारा बार-बार प्रार्थना किये जाने पर गरीब सुदामा अपने बाल-मित्र से मिलने द्वारका पैदल ही चल पड़े थे। यदि कोई लाइन बिछी होती तो कोई पटरी क्या सुदामा को परेशान करने देती ? दीन ब्राह्मण की यह दशा ! 'इस सदी' में गरीबी की रेखा से उस उबारने की आवाज उछाली जाती है। गरीब तो जहाँ के तहाँ हैं। रेखा तो कहीं दिखाई ही नहीं देती। सुदामा-दल जरूर द्वारका के स्थान पर बड़ी राजधानी के चक्कर लगाकर आवेदन लगाते कुछ सिमिमधान और कुछ बहुमत्यक के जोर पर दबाव डाल तथा अपने चक्कर में लपेट काम बना लेते हैं।

श्रीगणेश के चलाये मूषक 'शार्ट' परिक्रमा मन-पथ पर कुबेर जैसे कोषाधिपति भी चक्कर खा गये। तबसे बुद्धि के देवता प्रथम वन्दनीय, विघ्नहर्ता हो गये, सुदामा के तन्दुल ने क्या रंग लाया— यह सुदामा वेद पढ़ाने वाले दीन अध्यापक न समझ पाये। उनका भाग्य सूरज चमका, लौटने पर भव्य परिवर्तन का चक्कर उनकी समझ में नहीं आया। हैरान-घबराकर 'देश' का ऐसा स्वरूप देख गश खाकर चारों खाने चित्त हो गये। विकास का चक्कर अब ऐसा ही चल रहा है कि कौन गश खा रहा है—यह कहना कठिन है, किन्तु 'पातालकोट' का आदिवासी, विश्वास नहीं जुटा पा रहा है।

प्यारे ! हम भी अनेकता की एकता के चक्कर में घिर गये। पत्रवाहक की आत्मीय भावुक वाणी के मधुचक्र में पर्वत से ऊँचे हो गये। मजदूरों के पसीने, लेखनी के प्रभाव से हमारा सूरज चमकने लगा। रोजी-रोटी के सवाल पर आखिर हम भी सहमत हो थोड़ा खिंचे-झुके और चक्कर में आ गये। कोमल प्रवृत्ति को बाँधने वाली भावनायें अपने मूल-भाव को छन्द में बंधने से विद्रोह करने लगी। उ

यह चक्कर समझ में आया, कि विभाग की चक्कर स्थानान्तर वाले ग्रह चक्र में दिशा बदल रहा है। कुछ समय-सयोग नई दिशा के लिए चक्कर काट रहा है। स्वामी का चक्कर लगाते हुए बिस्तर छोड़ने में शर्म न आया फिर दिमाग में बड़ी गार्डन के खुलने के नाटक में सारे ब्रह्माण्ड के दर्शन हमें राष्ट्र की राजनीति के चक्कर में होने लगे। चुनाव-चक्कर जब चलना प्रारम्भ हुआ तब आश्वासनों के पुलिन्दे बंधे नहीं रहे, जो काम कभी नहीं किये जा सकते थे, वे भी किये जाने के आश्वासन दिये जाने लगे। जनशक्ति आश्वासन के चक्कर में आने लगी। जो जितना आश्वासन करने का हुनर जानता है वह उतना ही जन का प्यारा बन हाथों-हाथ उठा लिया जाता है। तब उनको मत-पेटिया भर-भरकर उनका मनोबल ऊँचा उठाती और परिषद के भँवर चक्कर में बैठा देती। जन-पुरस्कारों में लिपटा स्वार्थ का चक्कर चलाना स्वागत करना द्वार साफ दिखाई दे जाता है। देश की निर्माण-योजनाओं का जाल साकार होकर रेल-लाइनों की तरह बिछने लगा। केन्द्रीय फेर-बदल में स्वतंत्र प्रभार या यथावत विभाग पर बने रहने की खुशी, बदले विभाग वाले समझने लगे। जब सयोग का चक्कर चलता है, तब दशा बदलने लगती है। गाँठ बैठाने का चक्र प्रभावशाली बनकर कुछ कर गुजरने की इच्छा रखने वाले हिन्दी में ईश्वर के नाम की शपथ ग्रहण कर, मातृभाषा का मान बढ़ा दोयम स्थिति से उबारने के समर्थक की लिस्ट में आ जाते हैं। अपनी धरती पर, अपनी बोली जाने वाली भाषा को भी अपनों के बीच बोलने का चक्कर भाग्यचक्र को राहु-केतु या शनि प्रभावित होने का भय ग्रस लेता है। समाज की भाषाओं में हिन्दी, उनके पद गरिमा से छोटी लगने लगती है, तब दूरदर्शन उनके अंग्रेजी वक्तृत्व वाले दर्शन को अनेक बार दिखाने का चक्कर चलाता ही रहता है। पराये को गले लगाना और अपनों से गला छुड़ाना—विरासत में मिला है।

विशाल भारत की विशाल परम्परा में 'छिन्दवाड़ा' का रिकार्ड,

[illegible]

पाता ? छोटी रेलवे लाइन से जुड़ा, छोटा शहर छिन्दवाड़ा बड़ी लाइन से जुड़ने के चक्कर में घिर ही गया। चक्कर आखिर चक्कर ही होता है। छोटा या बड़ा नहीं होता। चलते रहना ही उसका धर्म है। बीते वर्षों के सर्वे रिपोर्ट को बार-बार रेलवे विभाग ने पटल हेतु रखा बदला। बार-बार सर्वे के चक्कर से आखिर लग जाता। परिणाम में छिन्दवाड़ा, छोटी रेलवे लाइन को बड़ी लाइन में बदल देने की चक्कर चुनावी-चक्कर में आ आ गया। संसद में मंत्री विधानसभा से लोकसभा तक किनने, किस-किस तरह के चक्कर लगाए गए, पर कोई भी चक्कर छोटी लाइन को 'सतरह मील अर्थात् २५–३० किलोमीटर भी' बड़ी लाइन में नहीं बदल सका। रेल मंत्री इस चक्कर से आगे और बढ़ गये, पर छोटी लाइन [नैरो गेज] 'ओवर ब्रिज' के चक्कर में चक्कर खा गई। शासन के बजट पत्र में अर्थात् ज्योतिष-कुण्डली में बड़ी लाइन का चक्कर अभी चलते रहने के प्रबल ग्रह-योग बने हुए हैं। छिन्दवाड़ा नगर की जनता बड़ी सुशील और धीरज वाली है पच्चीस-तीस वर्षों में हो रहे सर्वे रिपोर्ट के भरोसे ही आश्वासन के चक्कर काट रही है कि 'ओवरब्रिज' पहले बनेगा, फिर सुपर ताप विद्युत केन्द्र बनेगा, तब तक तो 'धीरज' रखना ही होगा। छिन्दवाड़ा के लिए 'सुपर ताप विद्युत केन्द्र' की करोड़ों की योजना की स्वीकृति प्रदान कर–'सिगोड़ी से चौरई' के मध्य 'पेंच नदी' पर कृत सर्वे पर नई आशा बंधने का चक्कर सबल हो गया, लेकिन बड़ी रेलवे लाइन का सूरज निकलने में अभी देर लगेगी।

विकास की प्रगति देखकर ऐसा नहीं लगता कि संसद-सत्र में छिन्दवाड़ा की छोटी रेलवे लाइन को ब्रॉडगेज में बदल दिए जाने के ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पारित हो सके। ये चुनावी वायदे, उनकी पहल का चक्कर, दमदार नेता, छिन्दवाड़ा के भाग्य में शुभ ग्रह की स्थिति का योग अभी शायद नहीं आया। शायद ऐसी धारणा हो गई है कि छिन्दवाड़ा बड़ी रेलवे लाइन के लायक नहीं है। यह भी सम्भव है कि अभी तक प्रभाव प्रतिभावान दमदार नेता के दर्शन यहाँ की जनता को

विशेष स्वार्थ के फल हो सकते हैं पर छिन्दवाड़ा का महुआ और चिरौंजी अप्रत्याशित मँहगाई में उनके भाव बनाये हुए है। विकल्प मार गिराने का है नहीं। गमगीन व्यक्ति भी अब आँखें खुली रखता है। छिन्दवाड़ा का शोषण हो रहा है, क्योंकि उसे बड़ी लाइन के छोटे से टुकड़े से नहीं जोड़ा जा रहा है। गरीबों का एक ही केन्द्र-बिन्दु पर सभी सुविधायें दिखाई दे रही हैं। बड़ी लाइन के सभी कागज, मानचित्र, रिपोर्ट प्रविष्टियाँ सब तैयार हैं। वह यदि स्वीकार की गई तो ग्रामीण क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र बन जायगा। बेरोजगारी का झुण्ड कम हो जायेगा। शिकायतें कम हो जायेंगी। किसानों व्यापारियों की विजय, राष्ट्र की नींव मजबूत करने का भार चुपचाप कैसे टाल सकता है। छोटी लाइन सबसे बड़े अंधेरे में से होकर गुजर रही है। सतरह मील की व्यथा को खींचकर पैंतालिस किलोमीटर बना देने और सारी उमग जोर-शोर को, बड़ी लाइन से जोड़ने में प्यारे पिछलग्गू जैसा शानदार ठाप योजना 'फिश' कर देते हैं। तब कैसे ब्राडगेज का पाकर जोर मारेगा? साउथ-ब्राड गेज का बिना धुँआ और आवाज का इंजिन कब चमत्कार सीटी मारेगा? ऐसा सब जो पाप खा लेता है, जनशक्ति की ऐसी ताकत, जो सब कुछ करा लेती है, छिंदवाड़ा की जनता के पास नहीं है, इसीलिए 'नागपुर-छिन्दवाड़ा-परासिया' साउथ ईस्टर्न की छोटी लाइन का सेन्ट्रल रेलवे (मध्य-रेलवे) कोई अन्जाम नहीं देती। सेन्ट्रल यानी केन्द्रीय रेलवे विभाग के नेता या नहीं जानते कि साउथ ईस्टर्न की छोटी लाइन भी है। वह इतनी कम है कि उस दूरी को किसी योजना के तहत ससद-बजट सत्र में रखकर ब्राड गेज लाइन में शायद ही बदला जा सके। काम का चक्कर तो चलना ही रहता है। यह मानकर सुविधा का चक्कर पूरा कैसे हो सकता है? योजनायें विकास के लिए हैं। छोटी लाइन—विकास सूची में नहीं आती है। इसीलिए चुनावों के लुभावने पोस्टर के रंगीन मोटे हिन्दी या अंग्रेजी के पोस्टर चाककर नहीं डाला पा रहे हैं। हिन्दी दोयम चक्कर में पड़ी है। भारत का कोना-कोना भूला हुआ है, मुक्त-भोगी है, चाककर के स्वरूप को वह क्या जाने? बिना [illegible] पाकर उनकी कर्मभूमि पर

क्या छोटी पाँव वाले बड़ी पाँवों की रेलगाड़ी में बैठ सकते हैं ? पटरी बदलना किसी को सरल लगता हो किन्तु छिन्दवाड़ा नगर को पटरी के लिए उपयुक्त चौपाइयाँ नहीं मिल रही हैं।

मुहूर्त के लिए पण्डित मिलता नहीं। आखिर बैनर लेकर सड़क पर खड़े होना ही होगा, तभी छोटी लाइन को बड़ी लाइन में बदलकर हम गौरवमयी परम्परा स्थापित कर सकते हैं। ऐसा चक्कर यदि वे चलायें, तो देश भर में उनकी दुन्दुभी गूँज उठेगी। यह सब 'नैरो माइण्ड' से नहीं 'ब्राड माइण्ड' से सोचने से औद्योगिक क्रान्ति का स्फुरणकर नव दर्शन का मूल मंत्र है। खड़े होने के देश में कितने पायदान हैं किन्तु हिन्दुस्तान का एक पायदान छोटी लाइन से बड़ी लाइन में बदल देने के चक्कर में जुड़ा सत्य बताता है। चाहे तो कोर्ट के चक्कर में खड़े किये जाकर 'जो कहूँगा, सत्य कहूँगा, सौ बार यही कहूँगा', कि देश के नक्शे में छोटी लाइन के बिन्दु में छिन्दवाड़ा को बड़ी लाइन में रख दो, अन्यथा केन्द्र की राजधानी में भी खड़े किये जाने के पायदान टूटते नज़र आयेंगे, फिर यह चक्कर मात्र चक्कर ही रह जायेगा। राष्ट्र सेवा के लिए जन-क्रान्ति का चक्र, सर्वस्व और सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया जायेगा। लेकिन बड़ी लाइन का चक्कर प्रगति का चक्कर अस्मिता का चक्कर अनुभूति और 'प्रिस्टेज ऑफ प्वाइंट' बन जायेगा। चक्कर चलाया जायेगा—छिन्दवाड़ा से दिल्ली तक अर्थात् क्रान्ति चक्र का मूलपात केन्द्र तक हो जायेगा।

किस्सा दाढ़ी का

नारी और पुरुष सृष्टि के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। तुलसी को नारी के स्नेह ने प्रेरणा दी, जिससे उनके व्यक्तित्व में निखार आया। महान व्यक्ति की सफलता के पार्श्व में किसी नारी की प्रेरणा छिपी होती है। ऐसे व्यक्तियों की काया तथा संघर्षों की ताकत उनकी पत्नी अथवा प्रेमिका का सीमातीत प्रेम ही रहता आया है। वे सफलता के शिखर पर, उनके सम्मार्ग में कठिनाइयों का सामना करके ही चढ़ पाते हैं। महान व्यक्तियों में कुछ ऐसे भी हुए, जिन्हें अपनी धर्म-पत्नी से प्रताड़ना, उपहास, मानसिक तनाव और तिरस्कार के सिवाय और कुछ नहीं मिला। ऐसी तनावपूर्ण स्थिति में पत्नी के झगड़े और टकराव में भी जो व्यक्ति अविचलित रहे वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अवश्य सफल रहे। ऐसे महान साहित्यिक सृजनकर्मियों ने, अपनी आत्मशक्ति एवं धैर्य के बल पर जो सौन्दर्य की अनुपम सृष्टि की, अन्तर्जगत से शब्दजाल बुना और रचा वह विश्व में अद्वितीय हो गया। लोक-मानस की परम्परा से जुड़ा व्यक्ति ही जीवित रहा है। काव्य व कलाओं के अनुपम सौन्दर्य को माध्यम बना जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति उभर-उभरकर एक ताकत के रूप में प्रकट होती रही है—ऐसे व्यक्तियों में, जिन्होंने अपनी छाप और पहचान इस समाज में छोड़ी है। ऐसी पहचान में दाढ़ी की भी अपनी एक 'शान' है, जब पीछे के कलाकारों की छाप व छवि पर नजर दौड़ाई गई तब हर चौखट में किसी न किसी रूप में दाढ़ी उभर कर सामने आई।

आदि कवि वाल्मीकि श्वेत लम्बी श्मश्रु से अपनी अलग पहचान बनाये चित्रकारों की तूलिका द्वारा अंकित किये गये। शुभारम्भ वीर काल की गाथाओं के योद्धा या भक्ति और रीतिकाल में 'दाढ़ी' को बड़ा कलात्मक ढंग से चौखटे पर सजाया गया। वर्तमान काल में क्लीन शेव'—चिकने, सपाट चेहरे रखने का रिवाज जरा ज्यादा बढ़ गया है।

क

श्री जयशंकर 'प्रसाद' एवं श्री सुमित्रानन्दन पन्त के समकालीन साहित्यकारों में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। किन्तु इसी छायावादी युग में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी मुख-छवि की पहचान, 'निराले' ढंग से बनी खूबसूरत दाढ़ी के कारण, सबसे अलग बनाई। 'अज्ञेय' स्टाइल की दाढ़ी अपने आकर्षण के कारण अपने ढेरों अनुगामी (फालोअर) बनाने में सफल हुई। ऐसा लगता है कि उसमें नई पीढ़ी, प्रयोगवादी रचना के सदृश दाढ़ी की स्टाइल या सेट रखने में बाजी मार गई। इसे कौतुक या आश्चर्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि रवीन्द्रनाथ टैगोर या 'निराला' जैसी दाढ़ी के भव्य सेहरे उभार को नयी पीढ़ी ने अलंकार-भार मानकर उसे थोड़ा हल्की कर नयी सभ्यता ग्रहण की। बिखरे-बिखरे केश वाले, अस्तव्यस्त बालों की दाढ़ी में 'नागार्जुन' नई कविता में 'दुखमोचन' की 'नई पौध' से जमने लगे।

ऋषि-मुनि परम्परा या राजपूती पंजाबी चेहरों में एक अलग रूप झलकता है, जिससे उन्हें अलग-अलग पहचाना जा सकता है। वास्तव में श्मश्रु यानी दाढ़ी कोमल गालों पर नर्म-नर्म बालों के साथ चिबुक पर छाये अनगिन केश गुच्छों के बीच अलग अदा झलकाती है। नाज नखरे में पालित किसी कामिनी की भाँति वह अनुपम भोग भोगती है।

जिसने पहले 'कलीन' बन रहने के बाद विचारधारा बदली और अपने मुखारविन्द पर केश-घटाओं का जाल पल्लवित किया उसके कुछ परिचित चहेते एक अर्से के बाद उन्हें इस रूप में देखकर आश्चर्य-भरी मुस्कान के साथ चुटकियों के तीखे व्यंग्य में लपेटने चलते हैं।

दाढ़ी रखना, यदि एक ओर कौतुक अथवा अच्छा खासा मनो-रंजन बन जाता है तो दूसरी ओर उससे अपनी पहचान बनाने में पूरा-पूरा योगदान मिलता है। सच पूछो तो उनकी 'छवि' आने के पूर्व दाढ़ी पहले निकल आती है, जो 'छाप' बन जाती है। जीवन यात्रा में बहुत कुछ सहने के बाद, जब दाढ़ी को धारण करने का निश्चय हो

जाता है, तब सामने कई प्रश्न प्रकट होने लगते हैं—'क्या' की ऐसी इच्छा लगती है कि धारक को चुप्पी रखनी ही पड़ती है।

दाढ़ी रखी जाने पर कथ्य तो अलग ही होता है। मर्यादित स्वर के अब्ददम को भागन में समर्थन दाढ़ी 'ढाल' हो जाता है। कितनी प्रतिकूल स्थिति में चुपचाप धैर्य के साथ व्यथा के दर्शन अल पाना—दाढ़ी रखे मुखारविन्द से जाना जा सकता है। तब तो यही कह जा सकता है कि दाढ़ी, होते जड़ी बूटी की भांति, गृह-निर्माण पर कुछ लाभदायी-फलदायी अवश्य हो जाती है। इससे कुछ 'सीनियर' कुछ दार्शनिक कवि या विशिष्ट कलाकार छाप व्यक्तित्व दिखाई देने लगता है। आंखों पर जब गोल्डेन फ्रेम का चश्मा लगा होता है तो व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाते हैं। ऐसा व्यक्ति सम्पर्क बनाने में अपनी उच्च या निम्न कोटि की परख भी करा ही देता है। दाढ़ी क्षेत्र को देखकर कई अर्थ समाविष्ट हो जाते हैं। व्यंजना की भांति उसका क्षेत्र कैसे सीमित रह पायेगा।

'ये ऽ ऽ दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है'—प्रश्न उछलते हैं। जब तक ये कुछ उत्तर दे पाये, तब तक यह कहा जाता है—'क्यों चिन्ता करते हो यार ? हानियाँ होती ही रहती हैं अथवा दुःख तो आते-जाते रहते हैं फिर चौखटा क्यों लटकाये हो। बनवा लो 'दाढ़ी' और जरा फ्रेश हो जाओ।' सारे कथन मानो बढ़ी दाढ़ी के साथ बढ़ते, तैरते बादलों में आकर घिर जाते हैं।

राजनीति हो अथवा साहित्य-संस्कृति-जगत, रूप-रंग की मधुशाला हो या फिल्म दुनिया हो, पूजन केन्द्र या मंदिरों के ऊंचे शिखर या अध्यात्म जगत सभी स्थानों पर दाढ़ी का प्रभाव रंग जमा डालता है कि दूरदर्शन के कई चेहरे विभिन्न या विशेष दाढ़ी में दिखाई देने लगते हैं। ऐसा लगता है कि यह अदृश्य विज्ञापन बड़ा प्रभावशाली है। उसका इस दाढ़ी के साथ अतिशय गहरा रिश्ता बन जाता है इसका क्षेत्र विस्तार चन्द दिनों में आँधी की भांति फैलने लगता है। विस्तार की आँधी जब थम जाती है, तब मन के खिड़की-दरवाजे फिर

फट खुल जाते हैं। महानभूतिसमा मीठी-मीठी बयार खुली खिड़की के पथ से प्रवेश करने लगती है। 'क्यों भाई क्या हुआ ?' खिड़कियाँ खुला और आँखों की पुतलियों का घेरा बढ़ गया।

फैशन के दीवानों का चरमरा देने वाले शौकीन लोगों ना दाढ़ी खुजलाते देखा जाता है। दाढ़ी रखने की चलन पर वे मर मिटते र। आॅफीस स्टाइलो म 'फ्रो-फीस' सी दाढ़ी एक अलग वर्ग बाधक हो जाती ह कौन किसका समर्थक-पर्याय बन रहा है, एक पहचान उसमें हो जाती है।

'हरकत' हरकत हो जाती है, चाहे वह नकलची की ही क्यों न हो य नकलची जब अपनी हरकतों से आते हैं तब एक अलग दबदबा दिखाई देता है। नकल की प्रक्रिया हर क्षेत्र में अपना रोब जमा रही है पर्यवेक्षक इस हरकत पर काबू नहीं पा सकते। उन्हें सरेआम मरना थोड़े ही है ! आखिर बेचारों का परिवार है। यही वजह है कि नकल असल पर धौंस जमाकर उभर रही है। असल को नकल पीछे धकेल रही है, भले ही असल श्रेष्ठ हो। युग अपनी नकली खोट सिक्के पर चल रहा है। तब दाढ़ी के क्षेत्र में कौन, किसे रोक सकता है ? लेकिन इब्राहिम ब्रदर्स गोल्डन राजस्थानी, पंजाबी या फिर मुल्लाकट दाढ़ी सरेआम फल-फूल रही है। न चूकने वाले कब चूकते हैं—चन्द्रशेखर (जनता पार्टी) स्टाइल पर खिचड़ी दाढ़ी नटा लेना फैशन में शुमार हो गया है। अपनी राजनीतिक समझ कितनी है—वे जानते हैं। नवयुवा लो 'अजय' स्टाइल पर फिदा हो गये। कविता बोध या अर्थ बोध भले ही न हो, पर प्यारे ! हमारे स्पार्क्लाल उसी दाढ़ी में नजर आयें। दाढ़ी बढ़ाकर या रखकर वे आकर्षण का केन्द्र बन आँखों पर छा जाना चाहते हैं। उन्हें किसी पार्टी में सीट मिले या न मिले किन्तु बस या ट्रेन में बैठने के लिए सीट मिल ही जाती है। राष्ट्रीय प्रगति की ट्रेन किन राहों से, किस ढंग से चल पाती रही है—शायद लम्बी दाढ़ी वाले उच्च चिन्तक इसकी मीमांसा कर सकते किन्तु आज नवयुवाओं में यह

घर कर गई है कि लम्बी दाढ़ी मूर्खता की निशानी इसी है

जाता है, तब सामने कई प्रश्न प्रकट होने लगते हैं—'मियाँ' की ऐसी दशा लगती है कि धारक को चुप्पी रखना ही पड़ती है।

दाढ़ी रखी जाने पर कष्ट तो आना ही होता है। ममात्मक स्वर के शब्ददंश को भोगने में सम्भवतः दाढ़ी 'ढाल' हो जाती है जिससे प्रतिकूल स्थिति में चुपचाप धैर्य के साथ व्यथा के दंश को झेल पाना—दाढ़ी रखे मुखारविन्द से जाना जा सकता है। तब तो यही कहा जा सकता है कि दाढ़ी, हीरे जड़ी अंगूठी की भाँति ग्रह-निर्माण कर कुछ नामदारी-फलदारी अवश्य हो जाती है। इससे कुछ 'सीनियर' कट दार्शनिक कवि या विशिष्ट कलाकार छाप व्यक्तित्व दिखाई देने लगते हैं। आँखों पर जब गोल्डेन फ्रेम का चश्मा लगा होता है तो व्यक्तित्व में चार चाँद लग जाते हैं। ऐसा व्यक्ति सम्पर्क बनाने में अपनी उच्च या निम्न कोटि की परख भी करा ही देता है। दाढ़ी क्षेत्र को देखकर कई अर्थ समाविष्ट हो जाते हैं। व्यंजना की भाँति उसका क्षेत्र कैसे सीमित रह जायेगा।

'ये इतनी दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है'—प्रश्न उछाले हैं। जब तक वे कुछ उत्तर दे पायें तब तक यह कहा जाता है—'क्यों चिन्ता करते हो यार! हानियाँ होती ही रहती हैं अथवा दुःख तो आते-जाते रहते हैं फिर चौखटा क्यों लटकाये हो। बनवा लो 'दाढ़ी' और जरा साफ हो जाओ।' सारे कथन मानो बड़ी दाढ़ी के साथ बदले, नंगे बादलों में आकर घिर जाते हैं।

राजनीति हो अथवा साहित्य-संस्कृति-जगत, रंग-रंग की मधुशाला हो या फिल्म दुनिया हो पूजन केन्द्र या मंदिरों के उच्च शिखर या अध्यात्म जगत सभी स्थानों पर दाढ़ी का प्रभाव ऐसा रंग डालता है कि दूरदर्शन के कई चेहरे विशिष्ट या विशेष दाढ़ी में दिखाई देने लगते हैं। ऐसा लगता है कि यह अवश्य विज्ञापन बड़ा प्रभावशाली है। उसका इस दाढ़ी के साथ अतिशय गहरा रिश्ता बन जाता है। इसका क्षेत्र विस्तार चन्द दिनों में आँधी की भाँति फैलने लगता है। विस्तार की आँधी जब थम जाती है, तब मन के खिड़की-दरवाजे फटा-

फड़ खुल जाते हैं। महानुभूतिनुमा मीठी-मीठी बयार खुली खिड़की के पथ में प्रवेश करने लगती है। 'क्यों भाई, क्या हुआ ?' खिड़कियाँ खुलीं और आँखों की पुतलियों का प्रश्न बढ़ गया।

फैशन के दीवानों का चरमरा दल वाले शौकीन लोगों को दाढ़ी खुजलाते देखा जाता है। दाढ़ी रखना की नकल पर वे मर मिटते हैं। शोपीस स्टाइलों में 'नो-पीस' की दाढ़ी एक अलग वर्ग बाधक हो जाती है। कौन किसका समर्थक-पर्याय बन रहा है, एक पहचान उससे हो जाती है।

'हरकत' हरकत हो होती है, चाहे वह नकलची की ही क्यों न हो! ये नकलची जब अपनी हरकत में आते हैं तब एक अलग दबदबा दिखाई देता है। नकल की प्रक्रिया हर क्षेत्र में अपना रौब जमा रही है। पर्यवेक्षक इस हरकत पर काबू नहीं पा सकते। उन्हें सरेआम मरना थोड़े ही है! आखिर बखारों का परिवार है। यही वजह है कि नकल असल पर धौंस जमाकर उभर रहा है। असल का नकल पीछे धकेल रही है, भले ही असल श्रेष्ठ हो। युग असली नहीं खोट सिक्के पर चल रहा है। तब दाढ़ी के क्षेत्र में कौन, किसे रोक सकता है? लिंकन, इब्राहिम, बुलगानिन, राजस्थानी, पंजाबी या फिर मुल्लाकट दाढ़ी सरेआम फल-फूल रही है। न चूकने वाले कब चूकते हैं—चन्द्रशेखर (जनता पार्टी) स्टाइल पर खिचड़ी दाढ़ी बढ़ा लेना फैशन में शुमार हो गया है। अपनी राजनीतिक समझ कितनी है—वे जानते हैं। नवयुवा तो 'अज्ञेय' स्टाइल पर फिदा हो गये। कविता बोध या अर्थ बोध भले ही न हो पर प्यारे! हमारे प्यारेलाल उसी दाढ़ी में नज़र आयेंगे। दाढ़ी बढ़ाकर या रखकर वे आकर्षण का केन्द्र बन आँखों पर छा जाना चाहते हैं। उन्हें किसी पार्टी में 'सीट' मिले या न मिले, किन्तु 'बस या ट्रेन' में बैठने के लिए सीट मिल ही जाती है। राष्ट्रीय प्रगति की डोर किन हाथों में, किस ढंग से चल पाता रही है—शायद लम्बी दाढ़ी वाले तत्व चिन्तक इसकी मीमांसा कर सकते, किन्तु आज नवयुवाओं में यह धारणा घर कर गई है कि लम्बी दाढ़ी मूर्खता की निशानी होती है

है। राष्ट्रपति लिंकन के भद्दे चेहरे को चित्र में देखकर, एक बच्ची से न रहा गया। अत उसने पत्र लिखकर सुझाव दिया कि उन्हें दाढ़ी रखनी चाहिए। लिंकन साहब ने उस बालिका का सुझाव स्वीकार कर लिया। तब उनका चौखटा आकर्षक लगने लगा और उनके दाढ़ी के साथ फोटो मिलने लगे जो पूर्वापेक्षा आकर्षक और प्रभावशाली लगते हैं।

आप मानो या न मानो, किन्तु हम मान गये हैं अपने चौखटे में से दांतों का किला खिले रहने के कारण बन रहे पातालकोट को छिपाने के लिए दाढ़ी रख ली, बड़ा रोब बढ़ा साहब! व्यक्तित्व का प्रभाव भी गहराई तक जमा। दाढ़ी रखना शायद आपके लिए रहस्य बना है, परन्तु रहस्य का खातिर नहीं। फिर क्यों रखी क्या रहस्य है—दाढ़ी रखने में—इसे चुप पूछो और गुत्थी सुलझाते रहो। हमने तो रख ली सो रख ली। त्योहारों में जड़कर दाढ़ी का रंग मेंहदी-सा गहराता है। दाढ़ीधारी का मन 'आल्हा-खण्ड' के नायक-सा आवेश में भर उठता है 'नवरात्रि' जैसे पर्व में तो दाढ़ी बरसाती हरियाली सी बढ़ने लगती है रमजान में वह 'लाल'-सी लगने लगती है।

भविष्य बताने वाले दाढ़ी का नहीं, भावी राष्ट्र के गहों का भविष्य बताने लगते हैं। शिवाजी और औरंगजेब की दाढ़ी देखकर वे अपनी अपनी औकात का परिचय देने लगते हैं। मनुष्य भी दाढ़ियों के स्वरूप में बँट जाता है। ये मुँहासे वाले ऊबड़ खाबड़ चेहरे राष्ट्र की जमीन का संकेत देते हैं। नग आकर वे क्या नहीं करते, चिकनी खाल बनाने के लिए नये-नये तेल और क्रीम का प्रयोग करने से वे नहीं चूकते? किन्तु दाढ़ी ऐसा उपजाऊ मैदान है, जो ऊबड़-खाबड़ को हरा भरा आकर्षक बना देता है। दाढ़ी और तेल—अलग-अलग अर्थ एवं भाव रखते हैं। पहला आन-बान और शान का प्रतीक है तो दूसरा चिकनी चुपड़ी, चापलूसी लिये जमा हुआ है। अगर समय रहते सजग नहीं होना तो भयानक स्थिति से उबारने के लिए फिर से किसी 'बिहारी कवि' को दोहा, छन्द रचकर विलास-तन्द्रा से कर्तव्य पथ पर प्रशस्त करना होगा। चापलूसी-सोच से छुटकारा दिलाने का साहस जुटाना ही राष्ट्र के स्वस्थ चिन्तन-भैरिक बनाना है। सही 'दाढ़ी' का

काट सके तो काट !

'कैसे, कटे-कटे रहते हो ?' यह सही है कि 'मैरिज पार्टी' में उससे कटकर आया था। उसकी आवाज सुनकर और आमना-सामना होने पर—कटकर रह गया। कैसे बिल्ली का काटा रास्ता पार किया ? समय से कटा न रहूँ, इसलिए कटे हुए पंख वाले पक्षी की भांति गर्मी में छटपटाता रहा। फिर भी वहां आया। 'बर्फी' परत-दर-परत चाकू से काटकर, एक थाल में जमाई जा रही थी। ऐसी भीड़ में खण्डित पत्थर प्रतिमा स्थापत्य की धरोहर-सा, अलग खड़ा हो गया। एकांत में कटने-काटने की बात कहाँ से पैदा होगी ?

गर्मियों में दिन काटे नहीं कटते, फिर रात में खाट पर पड़े ही थे कि थकावट ने नींद की बाट न देखी। आँखें मिच गईं और नींद की प्यारी गलबांहों में 'थाट' स्वर्ण-अक्षरों में कट-कटकर कई पोंगो (टुकड़ों-टुकड़ों) में बन्द चक्षु के दूरदर्शन सेट में दिखाई देने लगे। एक समाचार बुलेटिन से, काव्य के सौंदर्य ने 'कटी शाख' रचना पर कई अच्छे-अच्छों की नाक काट डाली। लय का ऐसा समा बंधा कि एक-एक मल्हार और संवाद के तार कब कट गये—पता ही नहीं चला।

बिजली के खम्भों से मनचलों ने, शरारती तत्वों ने तार काट दिये। बिजली के तार क्या कटे गहरा अंधेरा खौफनाक रूप में फैल गया। जीवन में भी घटित घटना एक झटके के साथ सारा काम रोक देती है। चलता आदमी बिल्ली के रास्ता काटने पर ठिठककर खड़ा हो जाये संशय और शक की परतें चढ़ने लगें तब रूढ़िवादिता इसी तरह प्रगति को काट देती है। अंधविश्वास प्रभावित आदमी शक को निकाल ही नहीं पाता। अनोपचारिक शक्ति आदेश, विचारधारा के अनेक रूपों को काटकर रख देती है।

आस-पड़ोस देश प्रदेश में आदमी से आदमी कटता जा रहा है

था काटा जा रहा है। सैकड़ों ऐब वाला आदमी, जीवों में श्रेष्ठ गिना जाता है। राजूपर के सारे स्वार्थ धन-लोलुपता का शिकार होकर घने जंगल काट देते हैं, ऊँचे पहाड़ काटकर खनिज निकालते हैं—सौंदर्यमयी प्रकृति की महत्‌ छवि का जी-भरकर लूट लेना, अपना धर्म समझते हैं। लोलुपता का शिकार पर्यावरण से प्रभावित आदमी, राजन सुना की ... बन्द काटकर, अपने सुख को प्राप्त वैभव से काट डालता है। दूर तक लम्बे वृक्षों की छाया कुछ क्षणों के ऊँचे अशान्त मन को शान्ति दिलाती थी। वे शान्ति के ... वृक्षों के कटते ही कट-कटकर आदमी से दूर ... गये। आदमी का अशान्त मन सामने ऊबड़खाबड़ नंगी जमीन का श्मशान-सा मैदान रखकर सिहरता नहीं और न अपने नंगेपन की भावुकता से कतरा ही है।

समाज और देश में आदमी की नाक स्वार्थ ने काट दी। ईमान बिक गया और आचरण कट गया। ऐसी दशा में हर कान में कोहराम मचेगा ही। नाक सौंदर्य की प्रतीक है तो नाक रखना गौरव की बात है। जब-जब कोई संस्कृति किसी संस्कृति पर छा जाती है, तब-तब रावण की बहन सूपनखा की नाक काटी जाती है और इतिहास का रुख बदल दिया जाता है। कटना बड़ा भयंकर होता है। मित्र मित्र से कट जाय अथवा कुटुम्ब से भाई, भाई से कट जाये तो कयामत आ जाती है, महाभारत होते देर नहीं लगती।

चोर बड़े चालाक होते हैं, किन्तु जेबकट और भी भयानक होते हैं। जेब काटते-काटते वे गला काट देते हैं। शासन की जेब काटते-काटते अधिकारी योजनाओं का गला काटते रहे हैं। अगर हथकड़ी भी पहना दी जाय तो हथकड़ी काटकर रफूचक्कर हो जाते हैं। चपटी नाक वैसी ही कटी-सी लगती है परन्तु सुस्वादु पान की गिलौरी, चबाये जाने पर रहन के लुत्फ के साथ गालों में घमककर ओठों पर रँग जाती है। पान के जोड़ का मधुर स्वाद उसमें लगे चूने के विषम एवं अधिक अनुपात से बिगड़ जाता है। ऐसी अवस्था में जीभ तो जीभ गाल भी कट जाता है जिससे भोजन का रसास्वादन भंग हो जाता है। ऐसे आसामी को

लगता है कि मिस्री की डली में कहाँ से गन्ने की काट आ गई, जो गला काट-फाड़ देती है। राष्ट्रीय आचरण और निष्ठा का रसास्वादन गाल कट जाने से बेमजा हो गया है। मामूली मसले अहम बन आड़ काटकर भड़क उठते हैं। नहले पर दहला और फिर 'कटाक्ष' की बात से बाजी हाथ लग जाती है। तलवार की पैनी धार जिसे न काट सके उसे छोटी सी बात, ओठों के बीच उठकर, रक्त की धार बहा देती है। छोटी सी उठी बात को काट न मिलने पर दुकान-मकान-बाजार जला दिये जाते हैं। हड़ताल और बन्द के नारों की गूँज शान्ति का रास्ता काटकर रख देती है। सम्प्रदाय का विष, द्वेष बनकर नाग-सा काटता है। सारा राष्ट्र नाग का काटा हुआ बेहोश पड़ा है। आदमी पर हैवान सवार होकर, उसके अपने शरीर को मरोड़ता-काटता रहता है। इतने पर भी उसे चैन नहीं मिलता। नदी की धारा चट्टान काटकर गन्तव्य मार्ग बनाती है, संस्कृति का रास्ता समय के साथ, कौन से रूप में भावी सुखद समय के लिए वर्तमान को काटेगा—यह समझ में नहीं आता। वृक्ष कुल्हाड़ी की मार से कटकर धराशायी हो गये। जंगल कटकर वीरान हो गये। बवंडर का कोहराम ऐसा मच रहा है कि खेत कम कट रहे हैं, फसल के स्थान पर हाथ कट रहे हैं। काम कौन करेगा ? रूखी रोटी काट-काटकर कौन खा पायेगा ?

कारीगरी की कुशलता से देश का नाम प्रसिद्ध हुआ था। गृह उद्योगों के ऐसे कुशल हाथ भी स्वार्थी बहुसीपन से काट दिये गये। कुशल हाथ यदि न काटे जाते, सहारा पाते, तो इतिहास का रूप कुछ और ही होता। 'मलमल' का ऐसा श्रेष्ठतम रूप उभरकर आया कि दाँतों तले अंगुली कट जाती है। विकास की उड़ान आश्चर्यजनक हो जाती है। अपना नीड़ से कटकर क्षुद्र स्वार्थ भटक रहा है और अधिकारी का मन अपने विश्वासी पर खटपट कर कट-फट रहा है। कान के कच्चे, किसी काट को क्या समझे ? फिर भले ही अपनी बात की जिद में वे कान कटा ले।

सुन्दर लड़की के नाक-नक्श और भौंह आँख की काट पर

छोकर सिर कटाना पर तुल जाते हैं तो दूसरी ओर भारी लड़की का दख कभी काट लेते हैं। उनके 'कवर' में उनके सम्बन्धी नाखून मक्खन लगायेंगे, पर उस ऊँचे राग को अपने अन्दाज़ में काट भी दिया जाता है। प्रेम का पक्षी पंख फैलाकर जब उड़ने लगता है, शृंगारगीत गूँज उठता है तब बिजली काटकर उसके प्रेम में अंधेरा फैलाता है। पक्षी के पंख काट देने की कोशिश में गले भी कट जाते हैं।

सारा आकाश बादलों से घिरा है। पक्षियों के पंख बादलों को काटकर खुले आकाश में प्रकाश भर देने की कोशिश करते हैं, पर आदमी का समुद्र-सा मन किनारों से कटा हुआ है। उसे इस प्रकाश में अपनी काली सूरत नजर आने का अंदेशा होने लगता है, और फिर अलग पहचान बनाने वालों का रास्ता काट दिया जाता है। पहचान के कटाव वाले, नशे के पान भी सतर्क हों, बाजी शीश हो जाते हैं। यही कारण है कि आदमी, आदमी से कटा हुआ है। देश प्रदेश से और प्रदेश अंचल से कटने को तुले हैं। प्रत्येक के हाथ में नारा का कटाव है। बस मौके की तलाश है। जोड़ने वाली मातृभाषा अपने अधिकार से काटी जा रही है। जब अधिकार ही काट कर छीने में रख लिए जायें तब हिन्दी की भाव धारा कटकर बिखरेगी और 'अंग्रेजी' दूरदर्शन से आँखों के सामने भटकेगी कानों में जबरन समायेगी। हिन्दी और हिन्दी-प्रेमी दोयम भावनाओं में कटकर बिखरते हैं, तो बिखरें। कानन-कविता-पथ का माधुर्य व्यंग्य की करारी काट से कट-कटकर कटु होता जा रहा है। राष्ट्र से आचरण कट गया है। राष्ट्रीय आचरण और नैतिकता की गाथा मन को काट देती है। स्वतन्त्रता सेनानी के स्वप्न, कटे आदमी का टूटता विश्वास बनकर, शब्दों को काट-काटकर अक्षरों को अलग-अलग कर नव संदर्भ और अर्थ की गरिमा में आतंकवादी की चोट से दम तोड़ रहे हैं। अराजकता कितना काटेगी? आज दर्द ही काट रहा है। संस्कृति का पन्ना-पन्ना कटा-कटा आदमी के मन-मस्तिष्क को हिला रहा है। 'हिन्दी लादी जा रही है।"—कहकर 'हिन्दी' को काटा जा रहा है जैसे मातृभाषा ही नहीं मन कट रहा है। कड़ी कटुता समझकर

गणनाद को ही न काटा जाने लगा। अशान्ति का भवन जातीयतावाद और प्रथाओं के चक्र में लगा होकर पतंग-सा कटाने पर तुला है। उस कटी पतंग को लूट लेने के लिए चारों ओर से लोग झपट पड़े हैं।

मियाँ-बीबी की तकरार में, घर से कटकर दुकान में बैठकर बीबी की जली-कटी बातें याद कर तड़पते हुए उसे घर परिवार बिखरना लगता है। इसी तरह देश के युवाओं का आचरण भटक गया है। राष्ट्र की युवा-शक्ति भी सबबन लगाने लगी है। उसकी आन-बान शान कट चली है। उसे ऐसा लगता है कि उसकी कोई सुनता ही नहीं और सुनता भी है तो उसकी बातें काटी जा रही है। इसी वेदना में उसकी सुखद नाद सिस्म गोल-सी कट रही है। शायद उसका भविष्य कटा दिखाई दे रहा हो। कट शब्द से 'योग' की शरण में पड़ना स्वाभाविक है। कटा तथ्य योग से जुड़ता है। जुड़कर माया-कन्चुक को हटा कर वह सदाशिव बनता है तथा ईश्वर यानि कन्चुक-काल, नियति राग, विद्या और कला से यानी 'आत्मा' के विभावी शक्ति-संकोचन से मुक्त हो मूल कारण में निरंजन। (निर्गुण शिव) हो जाता है। शक्ति ही शिव का धर्म है। शिव से जब शक्ति नहीं रही यानी कन्चुकी में लिपटी माया भी कटी, तब बन्ध याद रखो, वही शिव 'शव' हो जाता है। कटा शब्द इसी कारण अहम' अर्थ-वाचक है।

थोड़े से टीकरों के लिए देश की प्रगति का काट देना, हड़ताल बन्द के साथ माँगों का पूरा करा लेना—आज की नई कर्तव्य-सूची बन गई है। बल-पुकना का ऐसा अकाट्य तर्क—कटे पर नमक छिड़क देना है। राष्ट्रीय निष्ठा का परिचय तब कौन दे सकेगा ? यह सत्य है कि शासन जरूरतों या आवश्यकताओं को पूरी तरह पूरा करने से कटा कटा रहता है जिसका कारण शायद यह है कि कोई कुर्सी से कटना हटना नहीं चाहता। अपना पत्ता न कटे, सभी यही चाहते हैं। डार पेड़ से कट रही है, परन्तु किसे चिंता है ? इसी तरह ग्राम से ग्राम और शहर से शहर कट रहे हैं। सारा माहौल कटा-कटा सा लगने लगा है। **कम्याहों के आँधी में सात्विक विचार व सच्ची भाव में कटकर**

करके कुछ लोग प्रसिद्ध हो रहे हैं तो कुछ कलाई काटने लगे हैं। कुछ इसमें से कभी कट रहे हैं।

प्रगति की उड़ान के मधुर सपनों की तन्द्रा की रीत टूटी। आँखें मिचमिचाकर देखा, सूरज सिर पर चढ़ आया है। खाट के पाट पर श्रीमती, जीवन-सहचरी धीरे-धीरे पानी के छींटे मार रही हैं। ऐसी प्यारी नींद पर यह बलात्कार, मुझे अन्दर तक खौला देता है, परन्तु सहचरी के नयन-कटाक्ष ने काट कर रख दिया। 'काट सके तो काट' प्यार की कटार से कितनी बार कट चुका हूँ—याद नहीं आ रहा। प्यार की काट ना काट सको ना काटो। जीवन के दिन किसी तरह कट रहे हैं परन्तु पुरानी बात अब उभर कर आयी है यह कहाँ से उभरी सुनकर बहुतेरे कट के रह गये हैं। काट-छाँट करना अपना काम नहीं है।

आत्मकथात्मक
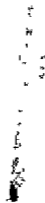
- जब रेखा बोल उठी–
- लालटेन–

जब रेखा बोल उठी !

देव-जन-विद्या के कला-साधक द्वारा प्राचीन काल में विभिन्न रंगों में किया गया लास्य, श्रृंगार, हर्ष, शोक, उन्माद एवं घृणा का प्रक्रिया का अंकन मेरे सुकोमल तन मन को आश्चर्य के साथ मुग्ध कर देता है।

चित्रों एवं मूर्तियों के रूप में मैं जोगीमारा तथा अजन्ता की गुफाओं की भित्तियों पर अंकित प्राचीन होते हुए भी चिर नवीन हूं। मुझे पाकर चित्रकार, मूर्तिकार व कलाकार अपने आपको भूल जाता है। जन-कल्याण-स्मरणार्थ नवनिर्माण के लिए चकित मैं सरल, वक्र रूप धारकर नूतन वस्तु भेंटकर सदैव संस्कृति का जीवन दर्शी बनी आ रही हूं।

मुझे पाकर तुम संसार को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हो, विशाल अट्टालिकाओं का निर्माण कर सकते हो, विशाल प्रासाद में जगतेश्वर की मूर्ति स्थापित कर सकते हो, नवीन भावभाकृति के निर्माण से एक और आकृति उत्पन्न कर सकते हो। लक्ष्मी की कृपा तुम पर हो सकती है। तुम दरिद्र से धनाढ्य होकर रजत-राशियों से अपना ऐश्वर्य प्रदर्शित कर सकते हो। तुम पर शारदा का वरद हस्त भी हो सकता है और ताण्डव-लास्य नृत्य के आदि देव महादेव भी प्रसन्न हो सकते हैं किन्तु स्मरण रहे, मेरा अपमान कर पलभर नहीं रह सकते।

मेरा स्वरूप पूछते हो ? मैं क्षीण से क्षीण, मोटी से मोटी होकर भी सौन्दर्य बिखेरा करती हूं। मेरी भी प्रारम्भिक अवस्थायें होती हैं। क्रमश क्षीण से मोटी हो, पृष्ठ-भीति पर एक भी छा जाती हूँ—मैं रेखा हूं।

मैं उपहार बन प्रिय और प्रियतमा का एकाएक मिलन के आनन्द का अवसर देती हूँ। शुष्क जीवन में रस का संचार करना मेरा ही कार्य है

आज विश्व में विज्ञान उन्नत हो रहा है—मेरे कारण, मेरे द्वारा। आज शिक्षा में जो महत्त्व मेरा है और जो मूलरूप मैंने पाया है वह किसी ने नहीं पाया। तुम एक नये आनन्द में बरबस खो जाते हो क्षण भर निहारते से रह जाते हो।

अपना प्रतिरूप अर्थात् छाया चित्र पाकर तुम उसे सजाकर रखते हो। मैं सभी को आनन्द देती हूँ—मुझे त्यागकर व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। मैं जीवन के हर रंग में जीवन से जुड़ी हूँ—मैं रेखा हूँ।

सरिता-तट पर गूँजती मोहन-मुरली की तान, गीतात्मकता की वह लय, सरिता का अवरुद्ध न होने वाला जल-प्रवाह, कानन का शान्ति-सौन्दर्य—श्री तुम कानों से सुनकर जान सकते हो। भूल ही तो मानव की प्रकृति है, किन्तु जब उसका अंकन कर सब तुम्हारी स्मृति को आन्दोलित कर चिर-स्थायित्व प्रदान किया जाता है तब मैं अस्थिर को चिर-स्थिरता प्रदान करती हूँ—मैं रेखा हूँ।

अजन्ता गुफाओं में यदि भूले-भटके, तुम पहुँच गये, तो तुम्हारी बुद्धि एकाएक ठनक उठेगी। आँख आश्चर्य से खुली रह जायेगी। कर्ण तो श्रवण हेतु जैसे खड़े होकर सुन्न जावेंगे और तुम देखते रह जाओगे, अपनी साधना को। साधक पर मैं खुश हूँ। उसकी निष्ठा और लगन का सम्मान करती हूँ। वही मेरे जीवन का गुण-ग्राहक है। वही मेरा प्रसाद पाकर, नवीनता व आश्चर्य स्थापित कर, विश्व को नया मोड़ देता है।

ताने-बाने की महीनता की गाथा तो ज्ञात ही होगी। अब उन तानों-बानों में जलकुन-स्वरूप को देख-देखकर तुम उसे पाने की इच्छा ठीक किया करते हो। मेरा रूप सदा बदलता रहता है। यही तो काल का स्वरूप है। सदियों पूर्व शिल्प-कल्पना में कुछ और, अब रहन-सहन, जीवन कुछ और ही है। मेरा भावी जीवन कैसा होगा—अनिश्चित है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस तरह विश्व बदल रहा है विचारधारा बदल रही है, साथ ही व्यक्ति भी बदल जाता है आत्मा से हृदय से,

तन से, मन से। फिर मानव के साथ रहने वाली मैं क्यों न बदलूँ। मूर्त से अमूर्त में होने वाला परिवर्तन उसीका परिणाम है। समय की धारा में सब परिवर्तनीय है—मैं भी हूँ। मैं रेखा हूँ।

तू हत्या कर, समाज में विप्लव कर, चोरी, आतंक कर, बच नहीं सकता। मैं सत्य की प्रतीक तुम्हारी प्रक्रिया का अध्ययन तुम्हारे साथ ही रहकर किया करती हूँ। तुम्हारे माथे पर अंकित हो, तुम्हारी मुखाकृति पर छाकर, तुम्हारी अंगुलियों से खेले गये स्वरूप पर, कृत्य पर, मैं सदैव रहती हूँ, अतएव तुम अपने दोष नहीं छिपा सकते। उस अपराध का दण्ड तुम्हें मिलता ही। मैं दोषी अपराधी की खोज में सहायता पहुँचाती हूँ। मैं रेखा हूँ।

जब मैं विभिन्न रंगों में अपने वसन को सज्जित करती हूँ, अपना विविध भाव प्रदर्शित करती हूँ, तब बहुतेरे घण्टों मुझे निहारा करते हैं। मैं यथार्थ के दर्शन कल्पना एवं सृजन न करा सकने वाले कलाकार के पास से छूट जाती हूँ, जिससे उसे भूत काल की स्मृति से, लगाव हो जाता है और वह वर्तमान से कतराता रहता है, भविष्य के प्रति आशावान नहीं रहता। अतीत-प्रेमी ऐसे कलाकार का जीवन उज्ज्वल नहीं रह जाता, अपने चारों ओर देखते रहने वाले, सजग कलाकार पर मेरा प्रकाशपुंज रहता है क्योंकि वह यथार्थ सत्य की आराधना करता है, साधनारत रहता है। साथ ही मानवीय गुण से निकटता रखकर, वह मनुष्य के साथ कदम से कदम मिलाता चलता है, जिससे उसकी कृति की असाधारण सहृदयता एवं संवेदन-शीलता को मैं भर जाती हूँ। सामान्यतः बच्चे मुझे देख प्रसन्न हो जाते हैं। उनके लिए तो मैं खिलौना हूँ। मैं रेखा हूँ।

हाँ, जिनके मस्तिष्क मुझे वास्तविक रूप में देखते हैं वे कुछ करते हैं। जो मुझे धुँधला देखकर नगण्य समझते हैं, वे अपने जीवन से महत्वपूर्ण वस्तुओं को खोया करते हैं। मेरा सत्य अमूल्य है। मैं मानव में विभिन्न रंग में रंजित जीवन हूँ—उज्ज्वल, क्षीण या लुप्त—परन्तु मैं

मैं तिमिर-जयी लालटेन हूँ!

मैं जल रही हूँ। निशावरी के तिमिर को हर रही हूँ, प्रकाश दे रही हूँ—अति अल्प! थोड़ा! अति अल्प! विद्युत जगमगाहट मुझमें नहीं जिसके चमचमाते प्रकाश में, मैं अपना वैभव प्रदर्शित कर सकूँ। वैभव ही तो भौतिकता का चरम है, जो कामना के अनुरूप समृद्ध होता है।

मैं एकाकी अवश्य हूँ, किन्तु सदैव कर्म-सिद्धान्त के अनुसार सचेष्ट रहती हूँ। कर्म, चाहे इस जन्म के हों चाहे पिछले जन्मों के—संचित कर्म जिन्हें प्रारब्ध कहा जाता है। मेरा जीवन लघु है, किन्तु लघुता में भी महानता निहित है यही मुझमें है। आप मेरी बात पर हँसते होंगे, हँसें! आपको शायद ज्ञात नहीं मेरा स्वल्प-कार्यक्षेत्र हो गया है। उसे पूरी तत्परता से निभाती हूँ। शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार मैं अपना कार्य करूँगी और सदैव करती रहूँगी। मैं जानती हूँ, सौगन्ध खाने में निपुण राष्ट्र, अपने जीवन में, आदर्श को उतारने का उपदेश देता है परन्तु व्यवहार में सदैव उल्टी गंगा बहाता है। सपनों को पूरा करने की शपथ खाकर भी वह दूसरे ही दिन उनसे विमुख हो जाता है। गाँधी की मृत्यु के बाद, जीवित गाँधी के आदर्शों की शपथ खाकर भूल जाना इस देश का आचरण है। जयन्तियों पर फूलमालाएँ, निर्माल्य, सूत-मालाएँ पहनाने की आदत बरकरार है। समाधियों पर पुष्पाञ्जलि और मालाएँ चढ़ाने तो राष्ट्र-जन जाते हैं, परन्तु उनकी कर्मभूमि की ओर देखने से अन्दर से भयातुर हो जाते हैं। मुझे याद आ रहा है सेवाग्राम जहाँ मैंने "बापू" को देखा था। वह स्मृति आँखों में उभर आती हैं—जहाँ बैठकर वे लिखते थे, भोजन करते थे, विश्राम करते थे। वह कुटिया वह कर्मकक्ष, जहाँ एक चादर बिछी हुई थी। एक मेज पर लिखा करते थे बापू। उनकी 'लालटेन' अब नहीं जलती। राष्ट्र को प्रकाशपुंज बाँटने वाली 'लालटेन'—राष्ट्रपिता या राष्ट्रनायक

के अभाव में गहन अन्धकार की गर्त में डूब गई है। यह विवशता मुझे संताप करती है।

मेरी सादगी बहनों की आँखों को खलती होगी, खलती रहे। किन्तु स्मरण रहे इस सादगी में, मुझे जो सुख मिल रहा है—जो आनन्द मिल रहा है—मिलता है उसे मैं ही जानती हूँ। इतना अवश्य कहूँगी—चूकूँ क्यों, श्यामल रात्रि मेरे कृत्य से, स्वरूप से जलती है। उसके मन में वैमनस्य है। वह मुझे हानि पहुँचाकर एकाधिकार स्थापित करना चाहती है—मेरा अंग-अंग बिखेर देना चाहती है। काली रात्रि, अन्धकारमयी तिमिर—यामिनी भीम-रौद्र-भाव और आतंक जमाना चाहती है। अकेले वह कुछ नहीं कर पाती—तब वायु के कान भरती है। तिमिर यामिनी ऊँच-नीच समझाती है। वह तर्जना से कहती है—'अब मत जलना।' परन्तु निशा के साथ, पवन प्रवाह के बाद भी, मैं जल रही हूँ वैसे ही जैसे अभी।

मैं जिस परिवार में रहती हूँ, उसकी कुल-मर्यादा, कुल की लाज का ध्यान रखती हूँ। मेरा भी कुल-दीपक है, जो "प्राण जाय पर वचन न जाई" की भाँति जलता है, अन्तिम क्षण तक। फिर अपने से बड़ों पर वश नहीं चलता है। कर्कश स्वर में निशा की भर्त्सना वायु के साथ सुनती हूँ। उसकी भृकुटी टेढ़ी पड़ जाती है, उसको समझकर परिवार के हाव-भाव को परख लेती हूँ। उसके तेवर को समझ लेती हूँ। उसकी उन गाथाओं से भी परिचित हो गई हूँ जो मानव-जीवन के मोड़ हैं। मानव जीवन की गाथायें ही मेरे जीवन, मेरे एकाकीपन की साथी बन गई हैं। कभी-कभी मैं उनमें ऐसी मग्न हो जाती हूँ, उन्हीं में उलझकर अरुणशिखा की आवाज सुन चौंक उठती हूँ।

मुझे ज्ञात है, एक लेखक प्रत्येक रात्रि में मेरा सामीप्य पाकर लेखनी उठा लेता था। मैं अपने प्रतिबिम्बित नेत्रों में उसकी भाव-भंगिमा को, उसकी लेखनी की गति को देखती रहती थी, जिसके फल-स्वरूप मुझे प्रेममय जीवन का मर्म समझ में आया। उसीके फलस्वरूप मुझे ज्ञात हुआ कि अनुराग आसक्ति प्यार प्रीति प्रेम स्नेह के भेद

है जो विशेष रूप से आकृष्ट कर ले और वह आकर्षण स्थायी हो तो उसे उस स्थायी आकर्षण को 'अनुराग' माना जाता है। शुद्ध भाव से सत्य का लगाव भी तो अनुराग है, किन्तु 'प्रेम' शब्द सबसे व्यापक है, जो छोटे-बड़े-बराबरी आदि में भी हो सकता है। प्रेम तो अमूर्त वस्तुओं से भी हो सकता है। देश-प्रेमी, पुस्तक-प्रेमी शब्द तो आपने सुने ही होंगे। प्रेम का रूप सात्विक है। प्रेम और प्रणय में अन्तर है। प्रीति सामाजिक रिश्ता तक सीमित रहती है। प्यार प्रेम के लिए भी, प्रीति के लिए भी, होता है। अपरिपक्व नर-नारी के प्रेम के लिए इसका प्रयोग सार्थक होता है। जब चैन न पड़े, वियोग न सहा जा सके तब प्रेम की यह स्थिति 'आसक्ति' कही जायेगी। हां तो, आसक्ति उत्पन्न करनेवाला प्रेम होता है। इसमें लिप्त होने की भावना को समझकर ही गीता में कहा है कि "जो भी काम करो, कर्तव्य समझकर, किन्तु उसमें लिप्त होकर नहीं।" भाई! इसे ही तो निष्काम कर्म या अनासक्ति योग कहा गया है। अच्छा, हम प्रेम में उलझ गये। भय, शोक, करुणा आदि को भी मैं इसी भांति जान पायी। कभी-कभी लेखक के अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन, उसके मस्तिष्क पर पड़ती रेखाओं तथा मुख-मुद्रा की भंगिमा, उसके अन्तस्तल में उठने वाले विचारों की ध्वनि-तरंगमयी भाषा में होता था। उसकी भाषा एक नवीन तथा अनुपम गति धारण करती थी। भावावेश में वह कभी-कभी ऐसा वर्णन करता था कि विरह-युक्त वातावरण में, मुझे विरह की पीड़ा से मर्मगत बराबर असह्य ज्वाला में भस्म होता-सा प्रतीत होता था।

उसका नौकर मेरी सफाई एवं भोजन का प्रबन्ध करता था। विद्युत युग प्रारम्भ हुआ था। पर मेरे रहते उसने इस घर में प्रबन्ध नहीं किया था। कार्तिक अमावस्या के पूर्व लेखक के कुटुम्बी आये थे। प्रकाश की कमी के कारण उनके बच्चे मुझे जहां-तहां ले जाते। उनके ही कहने-सुनने पर दीवाली के समय बिजली लगवा दी गई। मैं कुछ समय तक कार्य करती रही, किन्तु बाद में एक कोने में पड़ी रहने लगी। लगभग छह मास बीत गये। इस बीच कभी किसीको मेरी सुध नहीं

के अभाव में गहन अन्धकार की गर्त में डूब गई है। यही विमुखता मुझे सतप्त करती है।

मेरी सादगी बहुतेरों की आँखों को खलती होगी, खलती रहे। किन्तु स्मरण रहे, इस सादगी में, मुझे जो सुख मिल रहा है—जो आनन्द मिल रहा है-मिलता है, उसे मैं ही जानती हूँ। इतना अवश्य कहूँगी—चूकूँ क्यों, श्यामल रात्रि मेरे कृत्य से, स्वरूप से जलती है। उसके मन मे वैमनस्य है। वह मुझे हानि पहुँचाकर एकाधिकार स्थापित करना चाहती है—सर्वत्र अंधेरा बिखेर देना चाहती है। काल-रात्रि, अन्धकार-मयी तिमिर—यामिनी धौंस-रोब-दाब और आतंक जमाना चाहती है। अकेले वह कुछ नहीं कर पाती—अत: वायु के कान भरती है। तिमिर यामिनी ऊँच-नीच समझाती है। वह तर्जना से कहती है—'अब मत जलना।' परन्तु निशा के साथ, पवन प्रवाह के बाद भी, मैं जल रही हूँ, वैसे ही जैसे अभी।

मैं जिस परिवार में रहती हूँ; उसकी कुल-मर्यादा, कुल की लाज का ध्यान, रखती हूँ। मेरा भी कुल-दीपक है, जो "प्राण जाय पर वचन न जाई" की भाँति जलता है, अन्तिम क्षण तक। फिर अपने से बड़ों पर वश नही चलता है। कर्कश स्वर में निशा की भर्त्सना वायु के साथ सुनती हूँ। उसकी भृकुटी टेढ़ी पड़ जाती है, उसको समझकर परिवार के हाव-भाव को परख लेती हूँ। उसके तेवर को समझ लेती हूँ। उसकी उन गाथाओं से भी परिचित हो गई हूँ जो मानव-जीवन के मोड़ है। मानव जीवन की गाथायें ही मेरे जीवन, मेरे एकाकीपन की साथी बन गई हैं। कभी-कभी मैं उनमें ऐसी मग्न हो जाती हूँ, उन्हीमें उलझकर अरुणशिखा की आवाज सुन चौक उठती हूँ।

मुझे ज्ञात है, एक लेखक प्रत्येक रात्रि में मेरा सामीप्य पाकर लेखनी उठा लेता था। मैं अपने प्रतिविम्बित नेत्रों से उसकी भाव-भंगिमा को, उसकी लेखनी की गति को देखती रहती थी, जिसके फल-स्वरूप मुझे प्रेममय जीवन का मर्म समझ में आया। उसीके फलस्वरूप मुझे ज्ञात हुआ कि अनुराग आसक्ति प्यार प्रीति प्रेम स्नेह के भेद

है, जो विशेष रूप से आकृष्ट कर ले और यह आकर्षण अस्थायी हो तो उसे या स्थायी आकर्षण को 'अनुराग' माना जाता है। शुद्ध भाव से मन का लगाव ही तो अनुराग है किन्तु 'प्रेम' शब्द सबसे व्यापक है, जो छोटे-बड़े-बराबरी वालों में भी हो सकता है। प्रेम तो अमूर्त वस्तुओं से भी हो सकता है। देश-प्रेमी, पुस्तक-प्रेमी शब्द तो आपने सुने ही होंगे। प्रेम का रूप सात्विक है। प्रेम और प्रगति में अन्तर है। प्रीति सामाजिक रिश्तों तक सीमित रहती है। प्यार प्रेम के लिए भी, प्रीति के लिये भी, होता है। श्रृंगारिक नर-नारी के प्रेम के लिए इसका प्रयोग सार्थक होता है। जब चैन न पड़े, वियोग न सहा जा सके, तब प्रेम की यह स्थिति 'आसक्ति' कही जायेगी। हाँ तो, आसक्ति अमूर्त वस्तुओं पर होती है। इसमें लिप्त होने की भावना को समझकर ही गीता में कहा है कि "जो भी काम करो, कर्तव्य समझकर, किन्तु उसमे लिप्त होकर नहीं।" भाई! इसे ही तो निष्काम कर्म या अनासक्ति योग कहा गया है। अच्छा हम प्रेम मे उलझ गये। भय, शोक, करुणा आदि को भी मैं इसी भाँति जान पायी। कभी-कभी लेखक के अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन, उसके मस्तिष्क पर पड़ती रेखाओं, नेत्रों व मुख-मुद्रा की भंगिमा, उसके अन्तःस्तल में उठने वाले विचारों की रंगीन-चित्रमयी भाषा में होता था। उसकी भाषा एक नवीन तथा अनुपम गति धारण करती थी। भावावेश में वह कभी-कभी ऐसा वर्णन करता था कि विरह-युक्त वातावरण में, मुझे विरह की पीड़ा से समस्त चराचर अनन्त ज्वाला में भस्म होता-सा प्रतीत होता था।

उसका नौकर मेरी सफाई एवं भोजन का प्रबन्ध करता था। विद्युत युग प्रारम्भ हुआ था। पर मेरे रहते उसने इस घर में प्रवेश नहीं किया था। कार्तिक अमावस्या के पूर्व लेखक के कुटुम्बी आये थे। प्रकाश की कमी के कारण उनके बच्चे मुझे जहाँ-तहाँ ले जाते। उनके ही कहने-सुनने पर दीवाली के समय बिजली लगवा दी गई। मैं कुछ समय तक कार्य करती रही, किन्तु बाद में एक कोने में पड़ी रहने लगी। लगभग छह मास बीत गये। इस बीच कभी किसीको मेरी सुध नही

आई। मुझे अति व्यस्त जीवन की चाह सताने लगी। अब एक कोने मे पडी-पड़ी सोचा करती कि "यह संसार नये को पाकर पुराने को अकस्मात एकदम त्याग देता है। अब मेरी आवश्यकता नही रह गई है—हे विधाता, इस निष्कर्म जीवन से मुक्ति प्रदान करो।" मैंने न जाने कितनी बार यह निष्कर्म मौन प्रार्थना-याचना की होगी। मेरा धीरज समाप्त हो रहा था। सामने ही भगवान का सिहासन था। पीतल के सिहासन में मुरलीधर की एक प्रतिमा थी। सुगन्धित अगरबत्तियाँ जला करती थीं। प्रतिदिन पूजा हुआ करती थी। लेखक की पुत्री सविता गीता पाठ करती थी। मै भी बैठी-बैठी क्या करती—ध्यान देने लगी सुनती और मनन किया करती। उसका सस्वर गीता पाठ मेरे ध्यान को केन्द्रित कर देता था। मै तो पहले जिज्ञासु होकर देखा करती थी, किन्तु क्रमशः उसका प्रभाव मुझ पर पड़ने लगा और मैं भी रुचि लेने लगी। 'कर्म' का महत्व तभी ज्ञात हुआ था। मैं व्यर्थ पड़े-पड़े जीवन से ऊबने लगी। आखिर कब तक आराम करती। मेरा इस जीवन से उद्धार करने वाला कोई दिखाई नहीं दिया। आखिर कृष्ण की प्रतिमा से भी मैंने बोलना बन्द कर दिया।

कृष्ण प्रतिमा मेरी ओर देखकर मुस्कराती ही रहती थी। वह मुस्कराहट मुझे खलने लगी। मुझे ऐसा आभास हुआ मानो वह मुझे चिढ़ा रही है। यह निर्मूल शंका थी। शंका का कोई उपचार नही होता। अतः निश्चित है कि यह सब मुझे असह्य होरहा था। इस दशा से मुक्ति की इच्छा प्रबल होती जा रही थी। कहीं दूर भाग जाना चाहती थी, किन्तु मेरा दुर्भाग्य मैं भाग नही पाती थी। मेरा व्रत चल रहा था। यही कहिये मुझमें तब भागने की शक्ति ही नहीं रह गई थी। भूलवश कोई उस समय मेरे पेंदे पर अँगुली फेर देता, तो उसे हलके से तबले की ठनठनाहट याद आजाती।

आखिर मेरे जीवन ने भी करवट बदली। मुझे लगा, वसन्त आ गया। मुझ पर किसीकी कृपा-दृष्टि पड़ ही गई। वह था वहीं का नौकर, जो मेरा उदर-पोषण किया करता था तथा मुझे साफ-सुथरा

कर आकर्षक बना देता था। मैं प्रफुल्लता से भर उठी, किन्तु मेरा उद्धारकर्त्ता मुँह लटकाये हुए था। उसकी उदासी से मैं शंकित हो उठी। उस रामू को उसके मालिक ने जंगल में-भेजने की आज्ञा दी थी। उसकी इच्छा तो नहीं थी। वह जाना नहीं चाहता था, किन्तु जाना पड़ रहा था। छोटों की यही तो विवशता रहती है। स्वामी और सेवक में यहीं तो अन्तर है। बाद में मुझे पता चला लेखक के छोटे भाई ने जंगल खरीदा था। वन से काटकर लकड़ी एक अन्य स्थान पर एकत्रित की जाती थी। उस स्थल पर, मेरा संगी एक झोपड़ा बनाकर रहता था। रात्रि को उस स्थान की चौकीदारी व परिक्रमा करता था। उसके हाथ में एक मोटा लट्ठ (डंडा) रहता था तथा दूसरे हाथ में मैं रहती थी। हम दोनों उसके प्राण-रक्षक थे। मार्ग दिखाना मेरा ही काम था। 'अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल।' तब मुझे लगता कि मैं प्रकाश हूँ। अल्प हूँ तो क्या? पर हूँ तो प्रकाश-पुंज ही। मैं अन्धकार को चीरकर मार्ग प्रशस्त करती हूँ। कहा भी है–'जो दीपक स्वयं बुझ गया है वह दूसरे दीपक को क्या जलायेगा।' मुझे लगता यह बनस्थली का निकटस्थ स्थल जैसे इत्र की शीशी हो, जब देखो-खोलो तो वह सदा सुगन्ध ही बिखेरती है। प्रकृति के सौंदर्य, की नई-नई छटा जब मानव-मन में प्रवेश पा जाती है, तब मनुष्य फल वाली डाल की भाँति झुक जाता है। यह प्रकृति भी परम सत्ता का अंश है। ग्रीष्म काल में, हमें कष्ट नहीं हुआ।

जून के अन्त में. कालिदास का मेघ, आषाढ़ का वह दिन, अब तक याद आता है। बादल घिर आये थे बरसने लगे थे। एक दिन तो उस वर्षा ने गजब कर दिया। न जाने उसने कौन सी प्रतियोगिता में भाग लिया था। साँस लेती ही न थी। उस झोपड़े में रामू था, मैं थी, उसका अंगरक्षक मोटा लट्ठ था। मुझे अपनी दशा की उतनी चिन्ता न थी और लट्ठ तो ऐसा बेसुध पड़ा था, जैसे नशा किये पड़ा हो और उसे उस नशे में कुछ न दीख पड़ रहा हो. किन्तु बेचारे उस रामू की चिन्ता मुझे सताती रही। उसकी दशा देखी नहीं जा रही थी। रात

भर खाँसता रहता और चौकीदारी करता रहता था। जब कभी हवा चलती, मारे ठण्ड के सिहर उठता था। इस वर्ष वर्षा ने उसे तन-मन से हरा दिया था। रात में सारे कपड़े भीग गये थे, ठण्डी हवा ने उसके तन पर तीक्ष्ण बाणों की भाँति प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया था। बेचारा करता भी क्या, अपनी गरीबी और ढलती उम्र पर आँसू बहा रहा था। भाग्य ही उसके विपरीत था। 'भाग्य' पर मुझे इस दुःख मे भी हँसी आ रही है, जैसे असमर्थता का दूसरा नाम ही भाग्य हो। हाँ! तो भाग्य ही रामू के विपरीत था। लकड़ी भरकर ले जाने के लिये पाँच-छह दिनों से कोई ट्रक नहीं आ रहा था। एक रात्रि को मेरा वश भी न चला और मेरा मुख प्यास से सूख चला। भारी वर्षा में प्यास, यह हँसी की बात हो सकती है, किन्तु मेरी प्यास तो मिट्टी के तेल से ही बुझती है। मेरी आँखें उसे पाते रहने पर ही ज्योतित रहती हैं। अब धीरे-धीरे मेरी भी आँखें बन्द होती जा रही थीं। रामू अलग काँप रहा था। कोई उसे यदि छूकर देखता तो शायद उसके तेज बुखार के ताप को व्यक्त करता।

रात गहरा रही थी, मेरे नेत्र-पलक भी मुँद रहे थे। रामू छटपटा रहा था। तेज साँस भर रहा था। झोपड़ी में कोई था भी तो वह सनसनाती हवा और पानी की टपकती बूंदें ही थी। उसे इस अवस्था मे देख कौन दु.ख बटाता, सहानुभूति दरसाता? हम सभी तो करुणा से भर रहे थे। धरती अपने लाड़ले की दशा पर तरस खा रही थी। माता का हृदय ममता से भरा रहता है। रामू पर भी क्या कम ममता थी? वह बेचारी आँसू से तर होरही थी।

अचानक तेज हवा चली, मैं वायु-प्रवाह के उस झोंके का सामना न कर सकी। पाँच दिन की झड़ी ने रामू के वृद्ध शरीर को भी मुक्ति पाने हेतु बाध्य कर दिया। रामू उस भीषण ज्वर की पीड़ा को न सह पाया और उसने दम तोड़ दिया। मैं पड़ी-पड़ी रोती रही। तब से अब तक मुझे एकान्त कारावास जैसा जीवन व्यतीत करना पड़ा। मैं तो समझती हूँ कि ऐसे जीवन या मनोवृत्ति को 'विविक्त' जीवन ही कहा

जा सकता है; क्योंकि अपनी अवस्था में घर-परिवार के किसी काम में कोई रुचि नही लेना 'विविक्त' जीवन ही हो सकता है। मैं भी इसी स्थिति में थी।

किसी को मेरे वैराग्य से, मेरी कोई चिन्ता न थी। हे ईश्वर, आपने व्यर्थ ही मेरे तन में शक्ति, संचार किया। वैसे आपके अहसान से ही मैं अब प्रज्वलित होने से दुःखी नही हूँ। ये आषाढ़ और सावन विसरते नहीं, बिसरे भी क्यों? एकाकी जीवन की संगी हैं ये घटनायें। अकेलापन खटकता तो है। अकेले में तरह-तरह की आशंकायें उठती है। इसीसे मै ईश्वर की ओर उन्मुख हो जाती हूँ। मुझे घटनायें विवश कर देती है--सोचने के लिए--विचार करने के लिए। मन की व्यथा तो मन में ही रखनी चाहिए, क्योंकि सुनकर सब हँसी उड़ायेंगे। मै लालटेन हूँ। अपने मर्म की बात कहना नही चाहती। जलते रहना मेरा धर्म है; प्रकाश देना मेरा कर्म। मैं जल रही हूँ। यद्यपि युग बदल गया है तथापि मेरी आवश्यकता तो पड़ेगी ही. कभी कम कभी ज्यादा। सयोग से मैं बहिर्मुखी हूँ, पर वियोग में मेरी सारी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होजाती हैं।

अब मै फिर जल रही हूँ। विभावरी के तिमिर को हर रही हूँ। मैं लालटेन हूँ। एक नये आलोक-पुंज से भरे युग की प्रतीक्षा में रत, जल रही हूँ। मैं लालटेन हूँ। प्रकाश का प्रतीक और तिमिरजयी लालटेन !!

कथात्मक

- सुबह का निकला–

सुबह का निकला.....

मेघगर्जना हुई, जैसे उड़ता-भागता मेघ पुकार रहा हो–"मैं जा रहा हूँ–जा रहा हूँ। नही लौटूँगा।"

"नहीं लौटोगे ! अच्छा तुम्हारे ये पागलपन-भरे नाटक बहुत होचुके। बस, अब नही ! अब नहीं !!"

इन्द्रनाथ गरजती आवाज सुन, एकाएक सोते से जाग उठ बैठे। यह क्या हो गया ? देखा, कुछ नही था। अन्धेरा ! बस घोर अन्धेरा था। आँखें फाड़-फाड़कर अंग-प्रत्यंग को भी वह किसी भाँति नहीं देख पा रहे थे।

किसने पुकारा ? शायद कमलनाथ था। स्विच आन किया। चारों ओर घोर अन्धेरा और अन्धेरे का घेराव सब कुछ लील गया। खिड़की खुली थी। उठे, झाँककर दूर तक देखा। कोई नही ? कोई हो तो दिखे। घड़ी की ओर देखा। ओह, दो बज गये ! आधी रात बीत गई, वह नही आया। न जाने कहाँ गया ? कहाँ गया होगा ? दिन भर हो गया ? क्या खाया होगा ? शब्द की भाँति जीव भी सारे देश देशों में ऐसे हैं–जिनके दो समान रूप मिलने कठिन हैं और जिनके रूप अर्थ व प्रयोग, प्रत्येक प्रसग बिलकुल एक हों। कहीं न कहीं प्रसंग में प्रयोग में, अर्थ में, शब्दों में, अन्तर रहता ही है, ऐसे ही दो जीवों मे भी।

आजकल के लड़कों को क्या हो गया ? अपने आपे में रहते ही नहीं। अपने साथियों के साथ कहाँ-कहाँ भटकते रहते हैं। कहाँ-कहाँ चले जाते हैं ? क्या-क्या गुल खिलाते रहते हैं ? भगवान ही मालिक है। यदि पालकों का नियंत्रण कम हुआ, तो ढील पाकर आकाश में में छितरा जाते हैं और यदि माता-पिता दो पक्ष बन गये तो तमाशा बना कटी पतंग बन जाते हैं। बताकर जाने में, न जाने क्यों साँप सूँघ

जाता है ? कालेजो की अभी-अभी परीक्षाएँ क्या समाप्त हुई, बस रात-दिन उनके होगये । जेठ की भरी दोपहरी मे, न जाने कहाँ चला गया ? चले जाते है तो ठीक पर साहबजादो से पूछो तो उत्तर दो-तीन शब्दो मे मिलेगा—'दोस्त के यहाँ ।' 'कौन से दोस्त के यहाँ ?'

चुप ! फिर कुछ नही बोलेगे, झट से दूसरे कमरे में चले जायेगे । उन्हें न भीषण दोपहर की गर्मी—धूप का भय और न खाने-पीने की चिन्ता । आये है तो खायेगे । थोड़ी देर टेप शुरू कर सुनेंगे । ऐसा ही कुछ करेगे । फिर चट से निकले तो कब आयगे ? शायद अंग्रेजी समाचार टी. वी. बुलेटिन प्रसारण के समय या इसके बाद मे । कभी-कभी दूरदर्शन के हिन्दी समाचार के समय । फिर, इन्द्रनाथ ने घडे का ठण्डा पानी पिया । लेट गये । बार-बार मस्तिष्क मे विचार कौधता—क्या होगया है इन्हे ?

पर आज । वह भोजन के लिए भी नही उठे । धीरे-धीरे दूर-दर्शन के सारे सीरियल निकल गये । छत पर घूमकर चौराहों पर, सडकों की ओर बार-बार देखते रह जाते । 'शायद वह आ रहा हो ।' रात के सन्नाटे में असामान्य आचरण—बहुत कुछ का भी आभास देने लगता है । एक को सठियाया और दूसरे को बालिग कहें तो गलत न होगा । संकुचित दृष्टि से अशान्त इन्द्रनाथ को अभी यह आशा बनी थी कि शायद कमलनाथ लौट आये, वह दरवाजा खोले, कहीं वह बन्द दरवाजे के कारण, फिर चला न जाये । उनकी आँखें ताकती रही । कब वह दिखायी पड़े । आखिर रात का सैलाब कम होन लगा । वे निरुत्तर हो गये । आँखें कुछ जलने लगी । गरमी तेज होती गई, अतः बटन दबाया, पंखा हवा फेंकने लगा । इन्द्रनाथ फिर लेट गये । थोड़ी देर बाद फिर उठे और लाइट आफ कर दी । कमरे में घुप्प अंधेरा । आज न जाने क्यों ऐसा हुआ ? प्रातः से ही सबके दिमाग में अँधेरा घिर आया । यह अँधेरा ! खौफनाक अंधेरा ! ऐसा भी घिरेगा !

लड़के काबू में रहे नही । जवाब दे दिया । लड़के का इस तरह जवाब देना वे सह नहीं पाये तीन व्यक्ति दो पक्ष का खिचाव एक-

दूसरे से खिंचे-खिंचे। आखिर जोर से कह ही दिया—'चले जाने की धमकी देते हो। जाने को कहते हो!! चले जाओ!!! अभी चले जाओ!!!"

—और, कमालनाथ चला गया। ऐसा क्या मालूम था? सोचा—शाम तक, रात तक आ जायेगा। कहाँ जायेगा? रोज की अपेक्षा आज कुछ ज्यादा देर लगाकर आए। किन्तु दो से ढाई, फिर तीन आधी रात से ज्यादा। ज्यों-ज्यों रात बढ़ती गई त्यों-त्यों इन्द्रनाथ मन ही मन दु:खी होते गये।

उन्हें नाजुक वक्त का ख्याल आया। यह उम्र बड़ी भावुक होती है। भावना में बहक कर — — — आये। काँप उठे इन्द्रनाथ। ऐसे चरित्र का नहीं है मेरा पुत्र। जैसे वे चीख उठे-'नहीं नहीं' यह चीख अन्दर ही अन्दर मन की थी; शब्द गले को चीरकर नहीं निकले। सहम गये थे उस अन्धेरे में इन्द्रनाथ।

उस अन्धेरे सन्नाटे में वकील से होती बातचीत का ध्यान आया 'हत्या! हाँ, हत्या कितने प्रकार की होती है?" उनका प्रश्न था। इन्द्रनाथ सोच में पड़ गये। कलम के धनी किसी पात्र का अधूरा चरित्र लिख, चरित्र-हत्या कर सकते हैं। राजनैतिक चरित्र-हत्या होती ही रहती है। पर, वकील साहब का प्रश्न कोर्ट से था; जीवन से था। जीवन कितने रूप में चलते-चलते रुक जाये, रोक दिया जाये, रोक लिया जाये।

—फर्श पर, रोड पर लाश—रक्त से लथपथ!

—चादर से ढकी जली हुई-बदबूदार लाश!

—फूली, बदरंग, इतनी फूली कि, उसके पहने कपड़े भी दुर्गन्ध फेंकने लगे! —पानी मे डूबी लाश!!

—विषपान की, नागिन से काटी गई ऐंठी, स्याह लाश!

—वाहन से कटी, क्षत-विक्षत! ओह! नहीं-नहीं! नहीं!! ऐसा स्वभाव ऐसा रक्त इस परिवार का नहीं। ऐसी गलत मानसिकता...... ! गलत विचारधारा...... ! नहीं नहीं!!

बैचेन हो गये इन्द्रनाथ। घबराहट बढ़ गई। पसीने से नहा गये। आशंका से मन भर उठा।

भरी दोपहर में लू-लपट के थपेड़े, गाल पर चट-चट ऐसे लगे, जैसे किसी ने गर्म चाटे रसीद कर दिये हों। प्रकृति के चाटे, बड़े तीखे-गहरे, तेज-तर्राट होते हैं। उस पीड़ा को वे न सह पाये। गले को चीर कर चीख निकल गई– "नहीं! नहीं!! यह गलत है– झूठ है! हे प्रभो; ऐसा कदापि न हो। कदापि न हो।"

"मोदीज मेडिकल जुरीस्पेडेन्स" की मोटी पुस्तक आँखो मे घूम गई। लोग पागलपन में न जाने क्या, कब और किस तरह कर जाते है। विक्षिप्त अवस्था में एक दौरा ही ऐसा होता है, जिसका अन्त है मृत्यु।

–कभी-कभी परेशानियाँ विवश कर देती हैं। घिर-घिर कर उठ-उठकर ऐसा आक्रमण कर देती है कि आत्महत्या के सिवाय कुछ दिखाई ही नहीं देता।

"–मान-आत्मसम्मान की गरिमा पर आँच आने पर, सदमा सहन नहीं करने से भी आत्महत्या होती है" –वकील साहब की आवाज गूँज रही थी। –"जनाब, तुम्हें मालूम है। सामान्य मौत के अलावा वासना, बलात्कार भी आत्महत्या कराती है या हत्या करवाती है। असफल प्रेमी भी कही न कही पर प्राण गवाँ, राहत पाते है। "

इन्द्रनाथ को अन्धेरे में उभरती उनकी ठहाकेदार हँसी गूँजती-सुनाई दे रही थी "हा हा! हा! हा!! हा!!!"

फिर वे सो नहीं सके! छत पर पहुँचे; टहलने लगे। –"कपड़े भी नहीं ले गया! पैसे भी नही! क्या पता किसी से लिया या नही? ऐसा तो नहीं था वह! अपने से बड़ों के प्रति पूज्य भाव था उसके मन मे।" इसी बीच उनके मन मे यह उक्ति उभर आई–

"पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर में हो माया,
तीजा सुख कुलवन्ती नारी, चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी।"

आचरण की प्रतिष्ठा, सम्मान की भावना उसमें थी। लगता है यह विकृत हो अब भावुक उम्र ने गर्व का स्थान ले लिया है। तभी अलगाव जागा। उसके बदलते व्यवहार से पिता ने हाथ खींचना शुरू किया। वे कुछ वस्तुएँ देने से कमलनाथ से कभी-कभी कतरा जाते। यही कारण मनोमालिन्य की स्थिति बनाने लगे। कारण मन मे खिचाव एकत्र करने लगे। अवस्था भेद ने अलगाव का भाव जगाया। इन्द्रनाथ को नीद का एक झोंका आया। "आज्ञाकारी – – आज्ञाकारी" –शब्द, प्रसगवश रूप ले नीद के झोंकों मे भी सामने दिख जाते।

मनुष्य चिन्ता लिये नीद की गोद में भले ही चला जाये। मस्तिष्क उस चिन्तन की छवि को उभारता रहता है। तनाव की घटना मे एक कारण उभरा "–माँ का स्नेह जब तक ममतामय रहेगा, हित-कारक रहेगा। पर कभी-कभी दुलार बढ़ावा देकर गलत प्रभाव डालता है।" इन्द्रनाथ के मस्तिष्क में यह विचार स्थायी रूप से जग गया है। जब-जब कमलनाथ देर-सबेर आया, उन्होंने कभी-कभार उसे डाटा, तो उसकी माँ ने बाधा खड़ी की। यह घर पहले कभी बड़भागी रहा है। इन्द्रनाथ और उसकी पत्नी में गहरा अनुराग रहा है। वे प्रेम-पूर्वक रहते आरहे है। किन्तु जिस बालक को अपने प्राणों की तरह सहेजते रहे, आज वह घर में टिकता ही नही। आदर के शब्द कुकिंग गैस हो चुके है। पिता के समझाने-डाटने पर जब माँ बीच में बालक की ढाल बन जाये, तब सतरह वर्ष की आयु के लड़कों को भटकते देर नहीं लगती। हवा का झोंका, बादल के टुकड़े को कहाँ से कहाँ उड़ाता चला जाता है।

वे फिर उठ बैठे। कान के पास मच्छर गुन-गुन करने लगे तो अपने कमरे में आ गये। धीरे-धीरे उन्हें यह विश्वास होता गया कि माँ के प्रोत्साहन पर कमलनाथ अपने साथियों को ज्यादा समय देने लगा है। उन साथियों की स्वच्छन्द वृत्ति से वह समाज में नाक कटवा देगा। क्रोध, रोष में पलायन करेगा। वह नहीं जानता–"ऋषि का क्रोध पानी की लकीर है–सज्जन का क्रोध 'बालू' की और दुर्जन का

क्रोध पत्थर की लकीर है। पहले दो क्रोध हवा के थपेड़ों से लकीर-से मिट जाते हैं, पर अन्तिम तीसरा लोहे के प्रयोग से ही मिटता है।"

इन्द्रनाथ के सामने चित्र उभरे—पहले कमलनाथ, फिर कुछ समय बाद उसकी माँ पड़ोसी के यहाँ चले गये थे। सोचा था शायद विवाद शान्त हो इसलिये गये है।

विवाद के बाद का सन्नाटा, घर में अपूर्व मुर्दा शान्ति थी गरमी की उमस थी। इन्द्रनाथ आदतन लेटे तो सो गये। नींद में उन्हें सुसुर-फुसुर सा सुनाई दिया—'चला क्यों नही जाता ? बाप ने कह दिया—चला जा !'

दूसरे दिन का नाटक बाद में समझ में आया। पूछ-परख से ज्ञात हुआ, वह दोपहर को अपने साथी के साथ 'पिक्चर' देखते देखा गया था। फिर पता चला छह बजे के लगभग बस स्टैण्ड पर दिखाई पड़ा था। उसके बाद नही दिखाई पड़ा !

आज पन्द्रह दिन हो गये। अधिमास का जेठ आग सा बरसा रहा था। भोजन के बाद थोड़ी सी ठंडक मे, नीद ने पलकों को पछाड़ा और वे मूर्छित होचली। इन्द्रनाथ तब से मौन रहने लगे। खाते-पीते, पढ़ते-लिखते, पर बोलते बहुत कम !! यथार्थतः कुछ न बोलते थे उन्हें सम्पर्क सूत्रों से ज्ञात हो चुका था कि कमलनाथ कहाँ हैं और कैसा है ?

समाचार पत्रों में जल-संकट, भीषण गर्मी का विशेष उल्लेख था ! जल संकट की अधिकांश खबरें। भोजन के बाद लेटे हुए वे विचार कर रहे थे कि अखबार वाले हाकर ने दरवाजे की सन्धि से आज का अखबार फड़ से फेका। पलँग के पास पड़ा अखबार वे उठा कर पढ़ने लगे। समाचार शीर्षक में जल-जीवन का विवरण, जल संकट का भयानक रूप सर्वत्र त्राहि-त्राहि !! जल व्यवस्था के प्रयास। उन्हें क्या मालूम था 'जल' जो प्यास दूर करता है, जल जो शीतल-ताजगी और जीवन देता है, वही जल जीवन के जल उठने में पहल

करेगा। पलकें भरी हुई, तन्द्रा आई, अखबार हाथ में ही रह कर नीचे खिसक गया।

'प्रातः नल खाली चल रहा था। पानी के लिए बाल्टी ले, वे सड़क के किनारे भाई साहब के नल पर आये। सड़क पर पानी का छिड़काव किया। सोचा दो-चार बाल्टी पानी नाली में डाल दे। चार-माह से जमादार ने नाली साफ नहीं की। बदबू कमरे में फैलने पर अक्सर पानी डालकर उससे बचा जाता था। उस दिन भी इन्द्रनाथ पानी नाली में डालने लगे। नल पर एक दो पड़ोसी आये। विवाद बनाना था। ये शरारती तत्व थे—इन्द्रनाथ कह रहे थे—'पहले मैं नाली में पानी डालूँगा, उसके बाद भरना।' वे न माने, जिद्द करने लगे। तब उन्होंने कहा—'मुझे मालूम है, तुम्हीं लोगों ने नाली साफ करने से जमादार को रोका है। मैंने जमादार से पता कर लिया।.........अपने घरों की संडास में पानी डालकर बहा देते हो, ताकि घर के पास बदबू फैले। रहना मुझे पड़ता है। मैं जानता हूँ, कैसे रहना होता है। इसलिए पहले मैं पानी डालूँगा!' उस समय कमलनाथ की माँ उनकी तरफ से कहने लगी। बाहरी विपक्ष से विवाद में अपना साथ न देकर विपक्ष के विवाद में, बीच में टाँग अड़ाना—इन्द्रनाथ को न भाया। विवाद का रुख बाहर से घर में आ गया। आवाजें मेघ-सी गर्जने लगी। पत्नी का गर्ज-गर्ज कर बोलना और वह भी, अपने पति की बुराई, बिना कारण आड़े हाथ करना—नमक-मिर्च सहित, चीखना, चिल्लाना इन्द्रनाथ सह न पा रहे थे। खास कर सामने वे विरोधी खड़े घर का तमाशा देख रहे थे, जो सदैव कुछ न कुछ हुड़दंग मचाते और तमाशा देखकर आनन्द उठाते रहते। आज उस टोली को पूरा आनन्द मिल रहा था। कमलनाथ की माँ आनन्द देने में जैसे पूरा मरो-समान जुटा रही थी, मन में आया तो बक रही थी।

"कमलनाथ के चले जाने की धमकी पर उसे चला जाने दिया गया!! पहले उसे प्रोत्साहन देना, फिर सीख और उपदेश देना व डाटना।" पत्नी न जाने क्या क्या कहे जारही थी। इन

उलाहनों का प्रसंग इन्द्रनाथ की मिट्टी खराब कर, उन्हें ठेस पहुँचा रहा था। अतः उन्होंने चुप रहना उचित समझा। अकेला घर, जेठ की गरमी, तप रही छत के नीचे, बदबू का झोंका, सारी यादों को समेट, आगोश में बाँधे-पलँग के साथ नींद में एक-एक दृश्य उभर रहे थे। "बहुत हुआ, चले आओ! अब तो आ जाओ।" सारा घटनाक्रम टी. वी. सीरियल-सा देख रहे थे इन्द्रनाथ।

अचानक पन्द्रह दिनों के बाद उन्हें लगा—खुला दरवाजा और भी खुला और एक छाया तेजी से अन्दर आई। फिर 'अम्मा! अम्मा'!! और उसके कदम कमरे से हाल में से होकर रसोई-घर में चले गये। इन्द्रनाथ ने करवट बदली—लगा जैसे ताजी हवा का एक झोंका लौट आया हो। यह अनुभव कर उन्होंने परमानन्द का अनुभव किया। तब भी गलती का अहसास कराने हेतु वे चुपचाप रहे। मौन-क्षमा प्रदान कर दी उन्होंने। वे सुनना चाह रहे थे प्रायश्चित्त के ये स्वर—'बाबू! माफ कर दो।'

वे चुपचाप पड़े रहे। पड़े-पड़े वे हवा के लौटे झोके का मन ही मन स्वागत करते रहे। उन्हें लगा सारा देश का चरित्र नाली-सा बन गया है, जिसमे दोषों की गन्दी बदबू महक रही है; उसे साफ करना ही चाहिए, अन्यथा जन-पर्यावरण असंयत-अशुद्ध बनता चला जायेगा।

एकांकी

० पर

पनघट पर

पात्र–परिचय :

सुरसती—आदिवासी कृषक महिला, आयु लगभग ४० वर्ष।

ज्ञानदा—सुरसती की बेटी, आयु १८-१९ वर्ष, मण्डल की १२ वीं बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण।

अनुसुइया—मातृ-पितृहीन आदिवासी बालिका ज्ञानदा की सहेली। अपनी सहेली के मार्गदर्शन में १० वी बोर्ड परीक्षा में बैठने की तैयारी कर रही है। मृदु स्वभाव के कारण ग्रामीणों की सहानुभूति।

मैना—३५ वर्षीय आदिवासी कृषक महिला, अनुसुइया की पड़ोसन।

कलसिया—गाँव की पनिहारिन, आयु ३०–३५ वर्ष।

[प्रातः का समय, पक्षी चहक रहे हैं, पशु चरने के लिए जाते दिखाई दे रहे है, उनकी आवाजे भी बीच बीच मे सुनाई पड़ती है, कुछ कृषक हल बक्खर लेकर खेत की ओर जाते दिखाई दे रहे हैं; खेलते हुए बालकों का शोर भी सुनाई देता है। इसी बीच पास से पनघट की ओर आती महिलाओं का धीमे स्वर में गीत गाते हुए प्रवेश]

ओह ..... ओह............!

मोहे पनघट पे सारी सखियाँ छेड़ गयी रे।

मोरी गुंडी गगरिया सब फेंक डारी रे।

मोहे पनघट पे .... ऽऽऽ

[पार्श्व से उक्त गीत क्रमशः तेज होता है। कुछ आदिवासी ग्रामीण महिलाएँ लोक धुन मे गीत गाते हुए प्रवेश करती हैं। कुयें की जगत पर कुछ ग्रामीण महिलाएँ अपने घड़े, गुंडी, कसैड़ी आदि माँज रही है और कुछ उन्हें धो रही है और कुये की जगत पर खड़ी होकर पानी खींच रही हैं। कुल महिलाएँ दुखी और कुछ प्रसन्न हैं। इसी बीच

पार्श्व से आता धीमा स्वर मंच पर आते आते तेज हो उठता है।]

लहलहा उठी है फसलें,
महक उठी हैं दिशाएँ,
पनघट पर जल-तल की थप-थप,
किंकणियों की गमक—गमक,
भेज दियो चिट्ठीया मोर रे।
मन में उठ रहा मधुर शोर रे।
पनघट पर ....

[अपने मटके घड़े आदि रखते हुए]

सुरसती—अरी मैना ! अपने तो करम फूट गये हैं।

मैना—काहे विन्ना !

सुरसती—का कहे री ! ससुरी अपने अपने करम है। पिछले जनम के करनी का पाप है, भोग रहे हैं। न रामायण पढ़ सके हैं, न चिट्ठी जाँच सकें।

मैना—काहे विन्ना ! तुम्हारे घर डाकिया भैया आ रहे, काहे के लाने आय रहे।

सुरसती—कलसिया घर में पानी भर रही थी न जाने कोई कागज उसे देकर चलो गयो। कागज को अरी लीटर लेटर कहे। का कहे आग जली, उस लीटर में का का खबर है, पूछी ही नहीं ?

कलसिया—मालकिन मैं का करूँ ? ओने पूछो, मेहगू दादा का है ? ओसे मैंने कही मालकिन नही है। बस, ओने चिठिया थमाई और चल दओ।

मैंना—आखिर चिट्ठी ही तो है विन्ना पढ़वा लेंगे काहे परेशान हो रही हो ?

सुरसती—बस री बस, पढ़ा लइयो, कोई हँसी खेल थोड़ी है, खेती-बाड़ी निदाई-गोड़ाई हो तो कर लयें। पर हाय ! हमारी किस्मत ही फूटी है। दद्दा-बऊ ने किताब पढ़ी नहीं और न हमें पढ़ाई। नहीं,

तो छोटो "अ", बड़ो "आ" पढ़ जाते तो गाव भर की किस्मत खुल जाती।

मैंना—अरे, जीजा तो पढ़ लेते हैं ना, फिर.........

सुरसती—अरे बस ! तेरे जीजाजी ठेंगा [अँगूठा दिखाती है] अँगूठा लगाना जानते हैं। तभी तो हमें दमड़ीलाल को हर साल कितना कुछ देना पड़ता है। हर साल रुपया देते रहो। जमीन हमारी, जमीन पर मेहनत हम करें और ससुरे को चुकाते रहो।

कलसिया—हओ ! मालकिन घर मे अनाज न बचे, पर उस कलमुहे को देते रहो। नास पिटे। मेरे कंगन, करदोना, सभी कछु डूब गये मालकिन।

मैंना—बस, बस कर कलसिया ! तूने तो डाकिया से चिट्ठी ले ली, फिर पढ़ने को क्यों नही कहा ?

सुरसती—हाँ री ! अगर लेटर पढ़वा लेती तो ज्ञानदा बेटी का हालचाल मिल जाता।

[ज्ञानदा और अनुसुइया खिलखिलाते हुए हँसी मजाक करते हुए प्रवेश करती है।]

अनुसुइया—मौसी ! ओ मौ सी !! ज्ञानदा आई है। गुड़-पट्टी खिलाओ, पास होगई है मैटरिक में ! हाँ मैटरिक में !!

सुरसती—आ बेटी, आ ! [हृदय से लगा लेती है और ज्ञानदा सुरसती के पैर छूती है।]

अनुसुइया—मौसी ! ज्ञानदा कन्या शिक्षा परिसर के होस्टल मे रहकर बारहवीं पास कर आई है। कछु खिला पिला दे, चाय पानी ही पिला दे, मौसी ?

ज्ञानदा—माँ ! मैंने एक पत्र लिखा था क्या तुमने नही पढ़ा ?

सुरसती—यह लिटर—लैटर का है बेटी ?

ज्ञानदा—हाँ माँ ! यही तो है। काहे तुमको नहीं मालूम था ?

मैं जा रही हूँ। तुमारे आशीर्वाद से मैंने प्रथम श्रेणी में बारहवीं मैटरिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है।

सुरसती—अरे! का कही बेटी मैटरिक की परीक्षा तूने पास कर ली है! हमारे भाग्य खुल गये इस गाँव में तेरे समान कौन पढ़ो लिखो है।

अनुसुइया—मौसी! ज्ञानदा ने मुझे चुपचाप पढ़ना लिखना सिखाया है। गाँव वालों को इस बारे में कुछ मालूम नहीं है और अब तो मौसी मैं दसवीं की बोर्ड परीक्षा में बैठूँगी।

सुरसती—का कही बेटी?

अनुसुइया—मौसी, दसवीं की बोर्ड परीक्षा में प्रायवेट बैठूँगी।

सब—[एक साथ] सच!! काहे ज्ञानदा! अनुसुइया का कह रही है।

ज्ञानदा—सच कह रही है माँ! मैं जब जब आती थी उसे पढ़ना लिखना सिखाती रहती थी, कभी कभी पुस्तकें ला देती थी, बड़ी तेज है, माँ! अनुसुइया। परीक्षा में प्रायवेट में भी पास हो जायेगी। इस वर्ष फार्म भी भर रही है।

सभी—ज्ञानदा बेटी दूल्हा देव तेरी भली करे री। जो पढ़े सो निहाल। तूने उसकी तकदीर सँवार दी। धन्य है बेटी, बड़ो अच्छो काम की है तूने: चलो घर चलें, थकी आरी आई है. कछु खा पी लें।

[सब धीरे-धीरे चले जाते हैं। गीत गुनगुनाते हुए]

मोहे पनघट पर सारी सखियाँ छोड़ गयी रे ....

[स्वर क्रमशः धीमे होता जाता है। बीच बीच में पक्षियों की चहचहाट एवं गायों की रँभाने की आवाज सुनाई देती है] [परदा गिरता है]

ललित

जीवन-परिचयात्मक

- सुनो ! गुलाब के मुखर लाल फूल—
- पूज्यपाद श्रीयज्ञसेन जी महाराज—

सुनो ! गुलाब के मुखर लाल फूल

ऐसा बहुत कम होता है कि कोई समूचा परिवार ही स्वतंत्रता संग्राम और देश की आजादी के साथ निरंतर स्मरण किया जाये। किन्तु, गरिमामय व्यक्तित्व के रूप में प० जवाहरलाल नेहरू को सदियों तक तक भारत ही क्या, विश्व इतिहास में याद किया जाता रहेगा।

बरसात के जाते-जाते, मन की बगिया में, कुनकुनी धूप मे, बाल उमंग उत्साह के रंग-क्रान्तिकारी परिवर्तन के लाल गुलाब, भारत की छाती धरती पर महक लहक उठे।

जन्म दिवस की परम्परा, किसे और कैसे स्वप्न को जन्म देती है ? किस रूप में यह 'यात्रा' कल्पना धारण कर लेती है। बाल दिवस उसी का एक पड़ाव है। जीवन-यात्रा के ये गुजरे स्टेशन, साल-साल के अंतराल में अपने दड़बे में से निकल 'गुटर गूँ' करने लगते हैं, फिर एक शोरगुल, भाषणबाजी का नशा दड़बे में बन्द हो जाता है या दड़बे मे ही यह क्रम चलता रहता है।

कहने को, मोतीलाल का एक ही लाल, 'जवाहर' के लिए भी कहने को एक छोकरी, और छोकरी के दो दीपक, जिनमे से एक देश के भाल पर प्रकाशित रहा है। 'लँगोटी' के सत्संग ने कुछ ऐसा प्रभावशाली खाद दे दिया कि 'मोती' के बाग मे एक गुलाब महक उठा, वह लाल गुलाब, लाल जवाहर-सा रत्न बन, प्रातः के लाल-लाल आकाश से हरी-हरी धरा पर, औद्योगिक सीढ़ियाँ लगाने में जुट गया, ताकि स्वर्ग के स्वर्णिम सुख चैन देश की नस-नस में प्रकाश किरण की ऊष्मा और शक्ति भरकर, चमक उठे, उत्कृष्ट धरा पर पुष्ट बाल विचरण करने लगे, युग के महाप्राणों में सरस मार्मिक दृढ़ता के भाव सजने लगे, समसामयिक स्थिति में प्रतिभाओं का स्तर समुन्नत हो सके, भारत की सोई आत्मा जाग उठे, खोया सौन्दर्य माधुर्य प्रेम की लालसा

बलवती हो उठे, खुले आकाश में बाल विहँग उड़कर, चिंतन की धारा में बहने लगें—विज्ञान की चकाचौंध और भीड़-भाड़ में शिष्टाचार दम भर सके, विकृति और विषमता की तथाकथित भद्र समाज की झूठी शान उजागर होकर पहचानी जा सके मुखौटा उठाने का आवेश और उत्साहजनक तेवर व पारंम्परिक मर्यादा की वाणी साहस से मुखरित हो सके, व्यक्ति विदूषक न बन जाये और मौलिकता का धनी उदार रोचक चरित्र का व्यक्तित्व लिये बाल लाल गुलाब-सा भारत के वक्ष मे लग जाये।

आस्था प्राण के संस्कार १४ नवम्बर को अनेक बार याद आ गये। यादों के कितने सैलाब लाल गुलाब खिलखिला उठे। कोई 'लाल' से यहाँ 'लाला' 'लाल-पाल-बाल' न समझे। यहाँ तो यह लाल सपूत ! 'लाल गुलाब' ! देश की शेरवानी या जोधपुरी कोट पर लगा मुस्कराता, ताजगी के लिए, लाल किले पर झण्डा फहराता रहा। वह अमर निर्माण वृक्ष लगा, इज्जत दिला इज्जत से रहना बता गया।

जवाहर की ओजस्वी आँखें भविष्य को पहचानती अपने जन्म के दिन को बालवृन्द के नाम कर, देश की भावी पीढ़ी के मन में झाँक लेती हैं, मन टटोल लेती हैं। जवाहर की क्रान्ति-दर्शित आँखें, देश के प्रबुद्ध की प्रज्ञा बन, बाल समस्या के निदान के लिए मंच दे देती हैं।

जवाहर का जन्म दिन 'बाल दिवस' के रूप में यथार्थतः बाल-सम्मान को बढ़ावा देता है। दूरदर्शिता के द्रष्टा विशाल भारत को, बाल-गोपाल की ओर उदार भाव से भर, भावी पीढ़ी के मजबूत कंधो पर भारत का भार, दायित्व सौपने की प्यारी मधुर कल्पना रही है। ममता के आगार मे लगा पौधा, कल फलदार पेड़ ही होगा, अतः लाल के ताजे फूल की वे पौध विकास और रक्षा की ओर ध्यान रखने के लिए अपना जन्म दिवस 'बाल दिवस' के नाम सौप दिया। यह सदैव स्मरणीय रहेगा कि पिता के कठोर नियंत्रण में रहकर ही वह प्रगति कर पाया है—अनियंत्रित सन्तानें प्रायः पतनगामी होती हैं। उन्हें प्रायः हर सुख सुविधायें प्राप्त थी वे मे पल्लवित और

पुष्पित होकर भी भव्य आनन्द भवन व उसके विशाल प्रांगण में आगामी जीवन को त्याग सके। उनके मन में देश की दीन दशा की गहरी कसक, सब सुख-सुविधा को छोड़ने को उकसाती रही और अन्त में वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद ही पड़े।

देश की बागडोर थामकर भी आराम से विमुख नम्र और सरल स्वभाव नेहरू प्रकृति से 'उग्र' तो थे, पर वह उग्रता दुष्टों और देश के गद्दारों के लिए थी।

अपनी वसीयत में गंगा को उन्होंने भारत की सभ्यता और संस्कृति माना है। इस भावना के पार्श्व में उनके मन में मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा थी। बच्चों के 'प्यारे चाचा' जन मानस की श्वास, जिनमें भारत के उत्थान की आकांक्षा और साहसिक शक्ति समाई थी। 'बच्चे और गुलाब का फूल' उन्हें सर्वाधिक प्रिय थे। 'बाल दिवस' इसी अगाध प्रेम का स्वरूप है। १४ नवम्बर, उनका जन्म-दिन, बालकों का पर्याय बन गया।

'लाल' में तरुणाई की आत्मा है। 'लाल' में प्रगाढ़ स्नेह है। लाल में त्याग की क्रान्तिमयी आभा है। लाल तथा जवाहर दोनों श्रेष्ठतम रत्न, भारत के कर्णधार स्वरूप, जिसे सबसे अधिक प्यार मिला। प्यार लाल गुलाब में उभर, उनकी छाती में लग जैसे अन्दर तक समा गया और खुशबू बिखेरता रहा, जबकि उनका कौन सा 'लाल' था? एक 'लालिमा कली' ही थी। 'लाल' को 'लाल' का अभाव नहीं था। राष्ट्र के सारे बाल ही उनकी आँखों के लाल थे। शायद इसलिए उनका तरुण रक्तिम गन्ध बोध गुलाब ही था। पितृप्रेम (वात्सल्य) का प्रतीक 'गुलाब के वक्ष पर लगाये रहे। मन की गोपनीय बात छिप न पाई। वे अपनी इच्छानुसार अपना जन्म दिन 'बाल दिवस' के रूप में मनाते रहे और उस 'लाल' (गुलाब) की गंध भारतीयों के प्राणों में समा गई।

सफल वकील का वह पुत्र, जिसमें एक सफल साहित्यकार के विचार बीज भी थे क्या आनन्द भवन में शिष्ट विलासी जीवन का

भरपूर उपभोग नही कर सकता था ? उनके मन में शांति ने ऐसी सक्षम क्रान्ति का सुगन्ध-मय गुलाब लगा दिया था, जिससे वे भारत के ही नहीं विश्व के शान्ति-दूत बन गये । पञ्चशील वास्तव में बुद्ध का एक मार्ग ही है । उस तत्त्वदर्शी साधक को राष्ट्र की चिन्ता थी और वही उनका एकमात्र चिंतन था ।

क्या जवाहर की छाती में लगे लाल गुलाब के ताजे फूल के प्रतीक 'भारतीय भावी लाल' भारत की भावी जीवन भावना को समझेंगे और वे राष्ट्र की शान के लिए, मान के लिए, अपनी गुलाबी गन्ध फैलाएँगे ?

आओ, प्यारे बाल-हंस ! चेतन पराग ! सजग होकर अपनी 'वाणी के स्वर' पहचानो । पराये स्वर में कितना ही मुखर हो पाओ आखिर पराई गंध पराई ही होगी । 'राजसत्ता मिली', किन्तु वाणी शायद खो गयी—उलझा दी गयी । पराई वाणी का विकास शायद एक ऐसी चाल है, जिससे भारतीय मातृभाषाएँ विकसित न हो पाईं । अपनी भाषा में जो आत्मीय, जुझारूपन और तेवर है, जो मधुरिमा और गरिमा है वह अपनी है । पराई वाणी में, पराये राष्ट्र के आचार-विचार व्यवहार, तो प्यारे बाल-गुलाब—पिंजड़े में बन्द तोते सा 'राम-राम' ही कहलाएँगे । गगन की वह उन्मुक्त उड़ान और उस उन्मुक्तता का आत्मीय सुख कैसे मुखरित कर, आनन्द पाओगे ? 'गुलाबो' उन्मुक्त उच्चारण कथन और नाना रटन में क्या कोई अन्तर नहीं ? अपना कोष बढ़ाओ, वाणी समझो अपनी । भारतीय भाषाओं का अक्षय कोष पराई भाषा को अपनाकर बोलकर नहीं बढ़ाया जा सकता । वह तो ऐसा धन होगा जो न कभी अपना ही होगा, और न सामान्य गरीब भारतीय जन को सुलभ रहेगा । यह विदेशी ऐसी वाणी है जो हमारे देशवासी की व्यथा समस्या को नहीं समझ सकती और न ही उन्हें समझा सकती है तथा जिससे हमारे गुलामी के शासन और उसके शोषण की बू आती है, वह कानों में खड़कती बिजली और दिल पर बन्दूक की गोली सी लगती है । मातृभूमि की कोई भी भाषा हमारी है अतः प्यारे लाल !

जवाहर के लाल गुलाब फूल ! ! उनके जन्म दिन पर तुम्हारी, अपनी राष्ट्र की पहचान भारतीय भाषाओं में बोलने लिखने और समझने से ही होनी चाहिये । राष्ट्र की आत्मा उसकी संस्कृति का कायाकल्प भारतीय जन और उसकी वाणी ही है—उसकी अपनी मातृभाषा ही है ।

प्यारे लाल गुलाब-रूपी भारत के नागरिक भी सुनो ! जिस भाषा में आम आदमी बोलता है, उन शब्दों के अन्त में संस्कृति निवास करती है । संस्कृति तो राष्ट्र की आत्मा है उसकी धारा । उदार भावना के कारण ही भारत ने सर्वसम्मति से हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया है । कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में, जवाहर लाल में क्रान्ति की भावना, माँ भारती के अनुराग में रही है शायद वही भावना उनके मन में बनी हो जो परिस्थिति वश अन्दर ही अन्दर घुमड़ कर फूटती आ रही हो । सात्विक-भावना से भारत आकाश में स्वतन्त्र मन-रथ से माँ भारती के चेहरे पर खुशियाँ भर दो । कुछ गजब की अनरजी बाल की चेतना से, प्रज्ञा से पहचान कर दृढ़ता के पाथेय पर चलने के कष्टों को गले लगाओ । बाल दिवस से ही भारतीय असंख्य लाल ! ओ, लाल गुलाब ! ओ बाल ! तुम्हारे मुख से सदैव मातृभाषा पुष्प सौरभ-सा मुखरित हो, ताकि इस धरा के दुख-दर्द को पी सको और दृढ़ता के तेवर वाणी और मातृभाषा की लगन में झलक पड़े । यही राष्ट्र-भक्ति का प्रथम चरण है । बिना इसे अपनाये जुझारू व्यक्तित्व का निर्माण नहीं होगा । कहीं-न-कहीं, कभी न कभी, किसी देश में यदि सिर झुकाना रहेगा तो अपनी मातृभाषा को न अपनाने व सीखने से, उसे न सीखने पर झुकता रहेगा । बाल-संसार के प्रिय विहग ! अपने पंखों को नये वातावरण के बनाने में गगन में दूर तक उड़ान भरने की शक्ति से मजबूत कर लो । यही दूरदृष्टि है, यही पक्का इरादा है । तुम्हारी वाणी में तब तुम नहीं, भारत बोलेगा व मन में छाये धुन्ध को दूर करेगा । हे लाल गुलाब के फूल तब वाणी में भारत बोलेगा ! !

पूज्यपाद श्री यज्ञसेन महाराज !

किसी जाति या उपवर्ग का इतिहास, उसकी वंशावली, स्रोत अभ्युदय व कीर्ति-कलाप आदि का क्रमवार निर्णयात्मक खोजपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जाना जितना जरूरी है, उतना ही वह कठिन कार्य भी है।

भारतवर्ष की अति प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति में गोते लगाने के साधनों का अभाव इस मार्ग में सबसे अधिक बाधक व कष्टदायक है। इतना तो निश्चित ही है कि जो जातियाँ या उपवर्ग वर्तमान में जीवन्त हैं, उनकी पृष्ठभूमि अतीत के गर्भ में रही है– कतिपय तत्वों–कारणों–से प्रेरणा पाकर ही उनकी व्युत्पत्ति हुई है। यह भी निश्चित है कि वे उपजातियाँ अपने ही जातीय व्यवसायों को अपने मूल वर्ग से कतिपय कारणों से विभक्त होकर भी, वही व्यवसाय करती आ रही हैं। उनके रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, विचारधारा और संस्कृति में सम्भवतः वे ही तत्व मिलते हैं, जो उसे महान समुदाय से जोड़ते हैं। ऐसे वर्गों-उपवर्गों या जाति उपजातियों का इतिहास जानना या खोजा जाना आवश्यक तो है, किन्तु है वह दुष्कर है। कब और कैसे उस जाति या उपजाति की व्युत्पति हुई, उत्थान व विकास यात्रा प्रारम्भ हुई– यह जिज्ञासा स्वाभाविक है।

भारतीय चार वर्णों में वैश्यों की अहम भूमिका रही है। वह एक विशिष्ट जाति है– जिसकी कई उपजातियाँ कई कारणों से मूल जाति से उत्पन्न होती रही और विलीन भी होती रही है ? अतः वैश्य समुदाय का कर्तव्य हो जाता है कि अपने समुदाय में जो उपजातियाँ या उपवर्ग है और जो जीवन्त है, उन्हें शक्ति देने के लिये, जाग्रत करने के लिये, उनके इतिहास का तथ्यपरक संकलन करने का निष्पक्षीय प्रयास यहाँ किया जाये

पूज्यपाद
महाराज
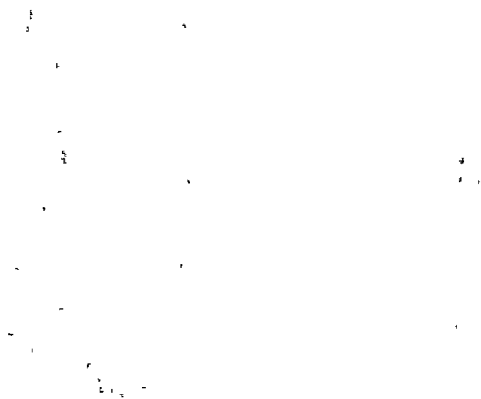
यह सम्भावना हो सकती है कि कतिपय उपवर्गों की ऐतिहासिक खोज गम्भीरता से पूर्ण हुई हो, और कुछ उपवर्गों के ऐतिहासिक खोज-विवरण उपेक्षित-अधूरे रह गये हों ? वैश्य समुदाय का तो महानतम सौभाग्य तभी समझा जा सकता है, जब कि सम्पूर्ण उपवर्गों का तथ्य-परक निष्पक्ष इतिहास संकलित किया जाये। कई उपवर्गों में व्याप्त निराशा या हीनता की भावना का उन्मूलन कर, उन्हें वैश्य होने का गर्व तो कराना ही चाहिये। उन्हें यह भी अनुभव करना चाहिये कि वे अदृश्य या लुप्तप्राय सूत्र अभी हाथ नहीं लगे हैं। इस कारण उस उपवर्ग का पूरा स्वरूप सामने नहीं आ पा रहा है। पर प्रयास किये जाते रहना चाहिये। समय आने पर अज्ञात सूत्र ज्ञात होंगे और भ्रम के अन्धकार को दूर कर विषय विवरण को प्रकट कर ही देंगे। मन में, जो अजीबोगरीब सी छटपटाहट रहती है उसे बौखलाहट में बदलने से क्या लाभ होगा ? चिन्तन में छटपटाहट के क्षणों में किसी न किसी व्यक्ति को कोई न कोई सूत्र हाथ लगेंगे ही और तब विद्यमान जाति के अतीत के सभ्यता-संस्कृति व जाति व्युत्पत्ति के अज्ञात पृष्ठ खुल जायेंगे।

यह तो स्पष्ट है कि किसी भी वर्ग-उपवर्ग के जातीय महापुरुष आदिपुरुष की उत्पत्ति, वंश-विस्तार का आधार पुराण प्राचीन ग्रन्थ, नगर, स्थान व विवरण हुआ करते हैं, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी उपवर्गों का अपना स्वतन्त्र सूत्र ही मिले। ऐसी स्थिति में उनके वर्ग से विभाजन व अलगाव के तत्व को आधार मानकर मूल जाति से जोड़कर इतिहास की कड़ी जोड़ी जा सकती है और व्याप्त भ्रम को दूर किया जा सकता है।

सम्भवतः इतिहासकारों ने जितनी सजगता, तत्परता राजवंशों के इतिहास लेखन में दिखाई है, उतनी जातीय, वर्गीय इतिहास लेखन में नहीं। यही कारण है कि जातीय उपवर्गों का इतिहास विशुद्ध रूप में सामने नहीं आया है। 'वैश्य समुदाय का इतिहास' इस दिशा में एक पहल मात्र है, जिसे सभी उपवर्गों के लिये अधिकृत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अभी कई वर्गों में इस सम्बन्ध में काफी कुछ अदृश्य है अर्थात

के गर्भ में उसे खोज लेने पर ही हमारा ऐतिहासिक कार्य अविकृत माना जा सकेगा। अतीत से खोजकर गवेषणा-पूर्ण सामग्री के आधार पर महाराज यज्ञसेन जी की उत्पत्ति, वंशावली व कथ्य कार्य-विवरण को एक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये। महाराज यज्ञसेन जी की उत्पत्ति का विवरण इस प्रकार है–

प्रजापति दक्ष के यज्ञ के समय महर्षि भृगु ने ऋचाओं के गायन-आवाहन के साथ, ज्योंही यज्ञकुंड की दक्षिणाग्नि में पूर्णाहुति दी त्योंही यज्ञाग्नि से तप्त स्वर्ण की सी कान्ति लिये एक यज्ञ पुरुष प्रकट हुए। यह यज्ञ पुरुष दक्ष प्रजापति के यज्ञकुण्ड की अग्नि के तपे सोने की कांति वाले कस्तूरी मृगों से जुते हुए, दिग्विजयी रथ पर आरूढ़, मणिमुकुटों को धारण किये हुए थे। उन्हें महर्षि भृगु ने ऋभु यज्ञसेन नाम से सम्बोधित किया।

> "दक्षयज्ञाग्नि गर्भ–सम्भूत तप्त कांचन समप्रभ
> कस्तूरी मृगण सयुक्त दिग्विजयीरथारूढ़ा।
> मणिमुकुटधारीम् ऋभुयज्ञसेन नामम्,
> महर्षि भृगु मुखारविन्दम् प्रतिष्ठितम्।"

उनके माथे पर लाल चन्दन का तिलक शोभायमान हो रहा था। स्वर्ण कुण्डलों से उनके दोनों कान तथा प्रभा से मुखमण्डल मनोरम दिखाई दे रहे थे। तीन मणियों के हार वक्षस्थल पर सुशोभित हो रहे थे। अश्व-चर्मवस्त्र से कटि प्रदेश ढका हुआ था। बाँये कंध पर यज्ञोपवीत और बाये हाथ में शंख धारण किए हुए वे शोभायमान थे। दुष्ट-दमनकारी एक विघ्नकारियों के विनाश हेतु दाहिने हाथ में प्रज्ज्वल्य-मान प्रभाव-पूर्ण गदा भी विराजमान थी। विशाल शक्तिशाली मनोहारी शरीर था। सभी दुष्ट कर्मों के विरोधी सिंह के समान उनके प्रभा-नेत्र अभय प्रदान करते थे। ऋषि-मुनियों से सम्मानित ऐसे महापुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ नमस्कार करता हूँ।

यज्ञ विध्वंस करने वाले हर तरह गणों से तुमुल युद्ध करने के हेतु उनके शरीर से चालीस हजार योद्धा, उनके ही समान उत्पन्न होगये

नुमुन युद्ध में बचे गणों को भयभीत कर विभिन्न दिशाओं में भगाकर उन्होंने प्रशंसा प्राप्त की।

क्रोधित शंकर ने दक्षयज्ञ के विध्वंस के लिये महान शक्ति-सम्पन्न वीरभद्र एवं भद्रकाली को उत्पन्न कर भेजा। पर यज्ञशाला में चालीस हजार यज्ञसेन वीरों ने सभी का संहार कर दिया। उन्होंने अन्य ऋषि व देवों को भी पराजित किया। वीरभद्र ने प्रजापति का सिर काटकर यज्ञ कुण्ड में डाल दिया। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र आदि देवताओं की प्रार्थना पर भूतभावन आशुतोष शंकर प्रकट हुए। युद्ध में मारे गये सभी को उन्होंने पुनः जीवन-दान दिया। दक्ष प्रजापति एवं समस्त देवताओं ने उनकी स्तुति की। उस समय ऋभु यज्ञसेन ने भी भक्ति भाव से भगवान शंकर की स्तुति की। भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर वरदान माँगने को कहा। तब महाराज यज्ञसेन ने वर माँगा कि 'हम चालीस हजार यज्ञसेन सदैव धर्म की रक्षा में लगे रहें किन्तु अपने कर्त्तव्य का अभिमान कदापि न करें और आपके चरण-कमलों का हृदय में स्थान सदा बना रहे।' भगवान शंकर ने 'तथास्तु!' कहा। साथ ही इन चालीस हजार यज्ञसेन बन्धुओं को समस्त ऋषियों के आश्रम में आश्रय दिया गया। पूर्ण अनुशासन से जिन-जिन ऋषियों के आश्रम में वे रहे, उनका गोत्र इनमें प्रचलित हो गया। वे आश्रमों के अनुशासन में रहकर यज्ञों की रक्षा सदैव करते रहे। भगवान शंकर के वचनों को शिरोधार्य कर महाराज ऋभु यज्ञसेन ने ऋषियों के अधीन समस्त चालीस हजार यज्ञसेनों को कर दिया।

ऐतिहासिक आधार पर महाराज यज्ञसेन के छियालिस पुत्र-पत्नियों के नामकरण इस प्रकार किये गये—

(१) अग्निसेन (२) नटसेन (३) मुक्तिसेन (४) अजितसेन (५) शिवसेन (६) सूर्यसेन (७) सत्यसेन (८) महासेन (९) चन्द्रसेन (१०) समरसेन (११) बुधसेन (१२) गुरुसेन (१३) शुक्रसेन (१४) कमलसेन (१५) मधुसेन (१६) रविसेन (१७) ब्रह्मसेन (१[illegible]) [illegible]सेन (१९) [illegible]सेन (२[illegible]) [illegible] (२१) पदमसेन

(२२) विराटसेन (२३) उग्रसेन (२४) कर्णसेन (२५) आदित्यसेन (२६) मङ्गलसेन (२७) शूरसेन (२८) शुभसेन (२९) चरणसेन (३०) सुन्दरसेन (३१) उन्द्रसेन (३२) पिंगलसेन (३३) बन्हिसेन (३४) वरुणसेन (३५) मुनिसेन (३६) भद्रसेन (३७) रक्षसेन (३८) अग्रसेन (३९) कुमारसेन (४०) मदनसेन (४१) मनिसेन (४२) नयसेन (४३) वगसेन (४४) लहरीसेन (४५) प्रलम्बसेन (४६) गौरसेन।

उक्त यूथपतियों को दक्षयज्ञ मे उपस्थित ऋषियों के अधीन कर दिया गया, जो आश्रमो की सुरक्षा, व्यवस्था एव पोषण करते रहे। आर्यावर्त आश्रमो में विभक्त था, जिनका सचालन ऋषियो तथा अनुप्राणित यूथपतियों द्वारा होता रहा। यह समय त्रेतायुग एव द्वापरयुग का सन्धिकाल ज्ञात होता है। महर्षि भृगु पूर्णत. ब्रह्मवादी थे। वे चारो वेदो के प्रकाण्ड ज्ञाता थे। उनके मुख पर योग तपोबल की आभा बिखरी रहती थी। तीनो लोको का मानसिक पूजन कर वे अन्न ग्रहण करते थे। वे नित्य यज्ञ करते और वेदो का अनुशीलन किया करते थे।

ब्रह्माणी, रुद्राणी एव महालक्ष्मी तीनो नारद जी के कारण महर्षि भृगु से रुष्ट होगई और उन्होंने अपनी-अपनी शक्ति यज्ञ करते भृगु से छीन ली। भृगु की वाक् शक्ति नष्ट हो गई और प्राणशक्ति के निकलते ही महर्षि भृगु ने ऋभु यज्ञसेन का स्मरण किया। नारद जी के सावधान किये जाने पर तीनो देवियाँ एकत्र हो गई और माहेश्वरी ने अपने मुख का विस्तार कर महाराज यज्ञसेन को उदरस्थ कर लिया। उदरस्थ करने के कारण ही महागौरी, महाकाली हो गई। द्वापर मे एव कलियुग के सन्धिकाल मे जो अन्धकार युग कहलाता है, मान्यतायें कालवश क्षीण होती गई और सद्ग्रन्थ लुप्त होते गये। पुनर्गठन करने पर इतिहास पुराणो, महापुराणो के अनुसार महाराज मनु द्वारा स्थापित सोलह सस्कारो को प्रत्येक यज्ञसेन बन्धु को अपनाना चाहिये। महाभारत के बाद महाराज जनमेजय के शासन-काल मे वर्ण-व्यवस्था का निर्धारण कर शान्ति स्थापित हुई, इसी काल मे यज्ञसेन बन्धुओं ने वैश्य

धर्म ग्रहण कर उसका पालन किया। यज्ञसेन समाज पूर्णतः शाकाहारी, अहिंसक एवं वैदिक संस्कारों में दीक्षित है। वह समाज, उत्थान कार्य में दृढ़ प्रतिज्ञ है।

श्री यज्ञसेन महाराज की वंशावली

प्राचीन पुराणों व शास्त्र-ग्रन्थों में वर्णित तथ्यों के आधार पर श्री यज्ञसेन जी महाराज की वंशावली हम नीचे दे रहे हैं—

श्री यज्ञसेन महाराज के बारे में वरिष्ठ विद्वानों में मतभेद है और वैदिक तथा पौराणिक ग्रन्थाध्ययन में जो तत्व मिलते हैं, उनसे यज्ञसेन महाराज की वंशावली की प्रामाणिकता स्पष्ट होती है। सभी पुराणों में यज्ञसेन-वंश का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भागवतपुराण, विष्णु पुराण तथा ब्राह्मण पुराण में उनका वर्णन (विवरण) मिलता है। श्रीमद्भागवत पुराण के चतुर्थ स्कन्ध के प्रथम अध्याय के श्लोक १ से ९ तक यज्ञसेन वंश का वर्णन मिलता है—

'मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुता ॥१॥
आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमती नृप।
पुत्रिका धर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥२॥
प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत्।
मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥३॥
यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक्।
या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूतानपायिनी ॥४॥
आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम्।
स्वायम्भुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥५॥
तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः।
तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद् द्वादशात्मजान् ॥६॥
तोषः प्रतोषः सन्तोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः।
इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥७॥

तुषिता नाम ते देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे ।
मरीचि मिश्रा ऋषयो यज्ञ सुरगणेश्वर ॥८॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रा महौजसौ ।
तत् पुत्र पौत्र नातृणामनुवृत्त तदन्तरम् ॥९॥

—श्री मैत्रेय जी कहते हैं कि हे विदुरजी, स्वायम्भुवमनु के महारानी शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद—इन दो पुत्रों के सिवा—तीन कन्यायें भी हुई थी। वे आकूति, देवहूति और प्रसूति नाम से विख्यात हुई।१। आकूति का, यद्यपि उसके भाई थे, तो भी महारानी शतरूपा की अनुमति से, उन्होंने रुचि प्रजापति से 'पुत्रिकाधर्म' के अनुसार (आकूति का) विवाह किया।२। प्रजापति रुचि भगवान के अनन्य चिन्तन के कारण ब्रह्म तेज से सम्पन्न थे। उन्होंने आकूति के गर्भ से एक पुरुष और स्त्री का जोड़ा उत्पन्न किया।३। उनमें जो पुरुष था, वह साक्षात् यज्ञ स्वरूपधारी विष्णु थे (यज्ञसेन थे), और जो स्त्री थी, वह भगवान् से कभी अलग न रहने वाली लक्ष्मीजी का अंशस्वरूपा दक्षिणा थी।४। मनुजी ने अपनी पुत्री आकूति के उस परम तेजस्वी पुत्र (यज्ञसेन) को प्रसन्नता के साथ अपने घर ले आये और दक्षिणा को रुचि प्रजापति ने अपने साथ रखा।५। जब दक्षिणा विवाह के योग्य हुई तब यज्ञ (सेन) भगवान् को ही पति रूप में पाने की इच्छा प्रकट की। तब भगवान यज्ञ (सेन) पुरुष ने उससे विवाह किया इससे दक्षिणा को बड़ा सन्तोष हुआ। भगवान् ने प्रसन्न होकर बारह पुत्र उत्पन्न किये।५। जिनके नाम थे—१ तोष, २ प्रतोष, ३ सन्तोष ४ भद्र, ५ शान्ति, ६ इडस्पति, ७. इध्म, ८ कवि, ९ विभु १० स्वह्न, ११ सुदेव तथा १२ रोचन।७। स्वायम्भुव मन्वन्तर में ये ही 'तुषित' नाम के देवता हुए। उस मन्वन्तर में मरीचि आदि सप्तर्षि थे। भगवान् यज्ञ (सेन) ही देवताओं के अधीश्वर थे।८। महान् प्रभावशाली प्रियव्रत और उत्तानपाद मनु-पुत्र थे। वह मन्वन्तर उन्हीं दोनो के पुत्र-पौत्रों और नातियों के वंश से आच्छादित हो गया।९।

इस प्रकार आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से हुआ। उनसे

यज्ञ (सेन) की उत्पत्ति हुई। यज्ञ (यज्ञसेन) की पत्नी का नाम दक्षिणा था उससे यज्ञ (यज्ञसेन) के १२ पुत्र थे, जिनके नाम क्रमश ऊपर दिये गये है। इसके बाद अनेक पुरुष उत्पन्न हुए, जो यज्ञ-निमित पदार्थों को बनाते व व्यापार करते थे। यज्ञ (यज्ञसेन) के १२ पुत्र स्वायम्भुव मन्वन्तर मे तुषित नाम के देव कहलाये। विष्णु पुराण के प्रथम अक के सातव अध्याय के श्लोक १६ से २१ तक भी यज्ञसेन यज्ञ का वर्णन मिलता है—

'ततो ब्रह्मात्मसम्भूत पूर्व स्वायम्भुव प्रभु।
आत्मानमेव कृतवान्प्रजापाल्ये मनु द्विज ।।१६।।'

—(तदनन्तर, हे द्विज! अपने मे उत्पन्न अपने ही स्वरूप स्वायम्भुव को ब्रह्माजी ने प्रजा-पालन के लिए प्रथम मनु बनाया।)

'शतरूपा च ता नारी तपोनिर्धूतकल्मषाम्।
स्वायम्भुवो मनुर्देव पत्नीत्वे जगृहे प्रभुः ।।१७।।'

—(उन स्वायम्भुव मनु ने अपने ही साथ उत्पन्न हुई, तप के कारण निष्पाप शतरूपा नाम की स्त्री को अपनी पत्नी के रूप मे ग्रहण किया)

'तस्मात्तु पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसज्ञितम् ।।१८।।
कन्याद्वय च धर्मज्ञ रूपौदार्यगुणान्वितम्।
ददौ प्रसूति दक्षाय आकूति रुचये पुरा ।।१९।।'

—(हे धर्मज्ञ! उन स्वायम्भुव मनु से शतरूपा देवी ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा उदार रूप और गुणो से सम्पन्न प्रसूति और आकृति नाम की दो कन्याएँ उत्पन्न की। उनमे से प्रसूति का दक्ष के साथ तथा आकूति का रुचि प्रजापति के साथ विवाह किया।)

'प्रजापतिः स जग्राह तयोर्जज्ञे सदक्षिणा।
पुत्रो यज्ञो महाभाग दम्पत्योर्मिथुन तत ।।२०।।

यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ।
यामा इति समाख्याता देवा स्वायम्भुवे मनौ ॥२१॥'

—[हे महाभाग ! रुचि प्रजापति ने उसे ग्रहण कर लिया । तब उन दम्पती के यज्ञ [यज्ञसेन] और दक्षिणा—ये जुडवा [युगल] सन्तानें उत्पन्न हुई ।२०। यज्ञ (यज्ञसेन) के दक्षिणा से बारह पुत्र हुए, जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में 'याम' नाम के देवता कहलाये ।२१।

ब्राह्मण पुराण अनुसगपाद-अध्याय १३ के श्लोक ६२ तथा ६३ में इन 'याम' नामक १२ पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—

१ यदु, २ ययाति, ३ वीवध, ४ भासत, ५ मति ६ विभास ७. केतु, ८ प्रयति, ९ विश्रुत, १०. द्युति, ११ वायव्य तथा १२ संयम ।

अत तुलनात्मक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकलता है कि यज्ञ (यज्ञसेन) वंश की प्रमुख दो शाखाएँ हुई । एक शाखा का नाम 'तुषित शाखा' तथा दूसरी का नाम "याम शाखा" था । इन दोनों शाखाओं के २४ पुरुषों के ही वंशज यज्ञसेनी वैश्य कहलाये, जो यज्ञ के खाद्य पदार्थों का निर्माण करने में अत्यन्त कुशल थे ।

सृष्टि के प्रारम्भ में श्री ब्रह्मा जी हुए । श्री ब्रह्माजी से मरीचि जी, श्री मरीचि से श्री कश्यप जी, कश्यप जी से वैवस्वत मनुजी, मनुजी से निदिष्थ जी, निदिष्थ से नाभागजी । नाभाग जी से वैश्य वर्ण/जाति का विस्तार हुआ । श्री नाभाग जी के पुत्र श्री भलन्दन जी हुए । श्री भलन्दन जी के वत्सप्रीति, वत्सप्रीति के प्राशु जी, प्राशु जी से मोद, प्रमोद, बाल, मोदन, प्रमर्दन और शकुवर्ण— ये छह सन्तानें हुई ।

श्री मोदन जी के वंश में ही यज्ञसेन जी महाराज हुए । श्री प्रमर्दन जी के वंश में श्री अग्रसेन जी हुये, जिनसे अग्रवाल वैश्य जाति की उत्पत्ति हुई । यज्ञसेन जी महाराज से उनकी कुल-परम्परा चली, जिसे यज्ञसेनी वैश्य के नाम से सम्बोधित किया गया । यज्ञसेनी वैश्य जाति १८ विभिन्न गोत्र वाले—वैश्यों का समुदाय है । ये सभी

श्री मोहन जी, श्री यज्ञसेन जी ही की अपत्य (सन्तान) नहीं थे। जिनका जो गोत्र है, उसी गोत्र-प्रवर्तक की वे सन्तान है। सन्तति, गोत्र, जन्म कुल, आर्यजन, वंश अन्ववाय इन शब्दों के एक ही अर्थ है। महर्षि पाणिनि के अनुसार 'अपत्य पौत्र प्रभृति गोत्रम्।'- अर्थात पोते-परपोते आदि सन्तानों को गोत्र कहते है। उक्त सूत्र में आये 'अपत्य' शब्द के आधार पर 'विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप और अगस्त-' इन आठ ऋषियों की अपत्य-सन्तान को गोत्र कहा गया है। श्री यज्ञसेन जी ने विष्णु-यज्ञ किया था। यज्ञ से प्रसन्न ऋषि-मुनियों ने श्री यज्ञसेन महाराज को यह वरदान दिया था कि कि आपका कुल यज्ञसेनी वैश्य कहलायेगा। इस प्रकार से पवित्र-यज्ञसेनी वैश्य जाति की उत्पत्ति हुई, जो वैश्योचित कर्म में दक्ष अपने विकास-पथ पर अग्रसर है।

जन्म दिवस का आयोजन :

मूल पुरुष, प्रातःस्मरणीय श्रद्धास्पद पूज्यपाद श्री यज्ञसेन महाराज शुभ पूर्णिमा को अवतरित हुए थे। पूर्णिमा के इस दिन श्री यज्ञसेन महाराज ने विष्णु महायज्ञ पूरा किया था। उसी दिन यज्ञ में उपस्थित ऋषि-मुनियों तथा ब्राह्मणों ने शुभाशीर्वाद दिया था।

'यज्ञसेनी नाम आज से वर्ग तुम्हारा कर स्वीकार-
पावेगा शुभ कीर्ति जगत में सुख-समृद्धि का हो विस्तार ॥'

स्थान निर्धारण पर मत

श्री यज्ञसेन जी कहाँ हुए थे ? इस सम्बन्ध में श्री मगली प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि 'बिठूर, जिला कानपुर [उ०प्र०] में हुए थे।' बिठूर में यज्ञकीलक [कीली] ब्रह्मशिला है, जहाँ पर उन्होंने यज्ञ किया था और आशीर्वाद पाया था।

कुछ लोगों का मत है कि कानपुर से कुछ किलोमीटर दूर गंगा-तट पर 'जाजमऊ' में वे हुये थे। 'यज्ञमयी' का अपभ्रंश 'जजमयी' और फिर जाजमऊ हो गया साक्षी-स्वरूप यहाँ राजा ययाति के किले के

खण्डहर विद्यमान हैं। उस समय जज्जमो अर्थात् जाजमऊ एक विशाल भव्य नगर था [अलबेरूनी-११ वी शताब्दी]। अलबेरूनी ने अपनी भारत-यात्रा सम्बन्धी पुस्तक में लिखा है कि कन्नौज से चलकार जौन [यमुना] और गंगा के मध्य, दक्षिण की ओर जाने वाले यात्री को जज्जमौ, [कानपुर मे १२ फर्सख अर्थात् लगभग ७२ कि०मी० या ४८ मील] अभापुरी, प्रयाग [गंगा-जमुना का संगम-स्थल] मिलते है। यहाँ और इसके आस-पास यज्ञसेनी वैश्यो की संख्या अधिक है। बिठूर और जाजमऊ क्षेत्र कान्यकुब्ज क्षेत्रान्तर्गत आते है।

तीसरा मत यह है कि यज्ञसेन महाराज मथुरा मे हुए थे। उन्होंने ब्रह्मधार मे यज्ञ किया था। महायज्ञ नाम विष्णु और ब्रह्म का भी है। 'शूरसेन' प्रदेश के प्रति थोड़ी यह शंका होती है कि यह प्रदेश अक्रूरजी व श्रीकृष्ण जी का है, जो कि चन्द्रवंशी थे। श्री यज्ञसेन महाराज सूर्यवंशी थे। सम्भावना यही है कि श्री यज्ञसेन महाराज यहा नहीं हुए होंगे। चौथा मत है कि यज्ञपुर तीर्थ [बिहार–उड़ीसा प्रदेश] मे यज्ञसेन जी हुए थे।

हमारा मत है कि जातीय गौरव महान प्रेरणास्रोत पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय यज्ञसेन महाराज के जीवन-वृत्त पर समाज की विकास यात्रा कार्य को दृष्टि से प्रामाणिक सटीक निष्पक्ष पुस्तक लिखी जाना कल्याण-कारी होगा। जातीय पेचीदी समस्याओ के सुलझाने मे जातीय जागरण संगठन व एकता के लिये आस्था और विश्वास अंकुरित करने के लिये रचनात्मक कार्यो पर बल देना चाहिये व अव्यवस्था पर नियंत्रण किया जाना चाहिये।

यज्ञसेन महाराज की बिठूर [कानपुर] जन्म-भूमि है। सौभाग्य शाली नगर होने के कारण यहाँ यज्ञसेनी वैश्य सम्मेलन भी आयोजित हुए हैं। व्यवसायी व्यस्तता से भरी इस महानगरी मे आदर्श सामूहिक विवाह संस्कार का आयोजन भी हुआ है। इसकी सफलता महानगरी कानपुर के इतिहास का एक दस्तावेज बनेगा प्रति वर्ष होली

मिलन-समारोह भारतीय संस्कृति को जीवन्त बनाये रखने की दिशा म महान योगदान ही है। बिठूर(कानपुर) मे यज्ञ कीलक [कीली] ब्रह्म शिला है, जहाँ पर यज्ञसेन महाराज ने एक महान यज्ञ किया था और ऋषि मुनियो से आशीर्वाद पाया था।

श्री यज्ञसेन महराज के चित्र का प्रकाशन

श्री यज्ञसेन महाराज के सर्वमान्य चित्र के प्रकाशन का भी इतिहास है। मै अनेक पत्र-पत्रिकाओं, स्मारिकाओ और लेटर पैड पर छपा उनका रेखांकित रगीन एव सुन्दर चित्र देखता आ रहा हूँ। कानपुर, आगरा, लखनऊ और देवास मे मैंने उनके तैल-चित्र (Oil Painting) देखे है। श्री यज्ञसेन महाराज का सर्वमान्य चित्र और उसकी अनुकृति जो पत्र-पत्रिकाओं मे देखने मे आती है, इसका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

आयुर्वेदाचार्य, राजरत्न, मल्लविद्याचार्य, विद्यालकार स्वर्गीय श्री जगन्नाथ प्रसाद गर्ग [विद्याशर्मा] ने अपने सम्पादकत्व मे "यज्ञसेनी वैश्य बन्धु"—[मासिक समाज पत्रिका]—का प्रकाशन, सूरजगेट-आगरा से सन १९४७ से आरम्भ किया था। इस मासिक पत्रिका के मुखपृष्ठ पर श्री यज्ञसेन महाराज का सुन्दर रेखाचित्र छपता रहा है।

प्रोफेसर श्री केदारनाथ वैश्य के सम्पादकत्व मे श्री रामसहाय गुप्त श्री नन्दकिशोर गुप्त व श्री ओमप्रकाश गुप्त के सहयोग से यज्ञसेनी वैश्य नवयुवको के प्रमुख मासिक पत्र—'यज्ञसेन युवक' का प्रकाशन सन् १९६० से लखनऊ मे हुआ था। उसके मुखपृष्ठ पर भी यज्ञसेन महाराज का सुन्दर रेखाचित्र प्रकाशित होता था।

श्री रामस्वरूप वैश्य—४१ शास्त्रीनगर लखनऊ के प्रधान सम्पादकत्व मे तथा श्री कृष्णकुमार गुप्त, श्री ब्रजमोहन गुप्त 'इन्द्रनारायण', श्री ओमप्रकाश गुप्त 'प्रकाश', स्व० श्री जगन्नाथ प्रसाद गुप्त आदि के सहयोग से त्रैमासिक "यज्ञसेन वैश्य समाज पत्रिका" का प्रकाशन सवत् २०३१ [जुलाई १९७४] से माल रोड कानपुर से

प्रारम्भ हुआ था। उसमें कभी मुखपृष्ठ पर, तो कभी-कभी अन्दर के पृष्ठों पर, कलेण्डर के रूप में भी यज्ञसेन महाराज का सुन्दर चित्र प्रकाशित होता रहा है।

इधर श्री प्रकाशनाथ गुप्त के सम्पादकत्व में धनकुट्टी कानपुर में 'यज्ञकाम' मासिक पत्र का प्रकाशन सन् १९८१ में किया जा रहा है। अब यही एकमात्र यज्ञसेनी वैश्य समाज का प्रतिनिधि पत्र है। इस मासिक पत्र में भी यज्ञसेन महाराज का रेखाचित्र समय-समय पर प्रकाशित किया जाता है।

श्री जगदीश शरण तायल, खारी कुआँ, मेरठ शहर, से "वैश्य उत्थान" मासिक पत्रिका का गत छह वर्षो से निरन्तर प्रकाशन हो रहा है। 'वैश्य उत्थान' के मुखपृष्ठ पर 'हमारे पूर्वज' शीर्षकान्तर्गत श्री यज्ञसेन महाराज [अस्पष्ट], श्री अग्रसेन महाराज, महाराज महासेन महाराजा—मणिकुण्डल, राजा टोडरमल तथा राजा रतनचन्द्र के चित्र छापे जाते हैं। यह अच्छी स्वस्थ परम्परा है।

स्मारिकाएँ—मुझे कुछ स्मारिकाएँ प्राप्त होती रही हैं—उनमें से कुछ का वर्णन नीचे दिया जा रहा है—

"युवक सन्देश १९७९ स्मारिका" श्री यज्ञसेन वैश्य युवक संघ कानपुर—१ द्वारा प्रकाशित हुई है। उसके मुखपृष्ठ और अन्तिम पृष्ठ पर श्री यज्ञसेन महाराज का रंगीन चित्र छापा गया था। "यज्ञसेन कल्याण" महात्मा यज्ञसेन मन्दिर-नामक पत्रिका १९७२ में यज्ञसेन वैश्य सभा लखनऊ द्वारा प्रकाशित हुई थी, जिसमें भविष्य की योजनाएँ शीर्षक के अन्तर्गत महात्मा यज्ञसेन मन्दिर के निर्माण तथा महात्मा यज्ञसेनजी के कैलेण्डर तैयार कर, वितरित करने की सूचना दी गई थी। महात्मा यज्ञसेन की पाषाण मूर्ति की स्थापना की जाये—ऐसा सुझाव भी इसमें दिया गया था।

युवक यज्ञसेनी वैश्य बन्धु समिति लखनऊ के पत्राचार में तथा 'विराट् युवा सम्मेलन एवं वार्षिक उत्सव" के अवसर पर 'यज्ञ-ज्योति

१९८२' का प्रकाशन हुआ था, जिसमे मुखपृष्ठ पर पूज्यपाद यज्ञसेन महाराज का रेखाचित्र प्रकाशित किया गया है।

सामूहिक विवाह समिति छिबरामऊ [फर्रुखाबाद], मैनपुरी, हरदोई कानपुर और लखनऊ मे आयोजित आदर्श सामूहिक विवाह समारोह के अवसर पर स्मारिकाएँ प्रकाशित कर उनमे पूज्यपाद यज्ञसेन महाराज के चित्र प्रकाशित किये गये है। इन सबमे बाजी मारी नवम यज्ञसेनी वैश्य आदर्श सामूहिक विवाह समारोह १९९१' की लखनऊ समिति ने। इस समारोह के अवसर पर जो स्मारिका प्रकाशित हुई वह देखने लायक है। उस स्मारिका के मुखपृष्ठ के दूसरे पृष्ठ पर पूज्यपाद श्री यज्ञसेन महाराज का सुन्दर, आकर्षक, नयनाभिराम रगीन चित्र छापा गया है। यह रगीन चित्र, यज्ञसेन वैश्य वर्ग की धरोहर है, जिसे जडवाकर [फ्रेम करवाकर] रखा जा सकता है।

समाज के यशस्वी एवं स्मरणीय रत्न

भारतवर्ष मे वैश्य समुदाय की बहुत बडी जनसख्या है। यह विपुलता अनेक वर्ग—उपवर्ग अथवा जाति-उपजातियो मे विभक्त है। गणना के आधार पर इस उपवर्ग की सख्या भी शतक पार कर चुकी है। वैश्य समुदाय के प्रमुख घटक उपवर्ग इस प्रकार है—

अग्रवाल, यज्ञसेनी, ओमर, दोसर, माहेश्वरी, नेमा, माहुर, कान्यकुब्ज कान्दू अयोध्यावासी, खण्डेलवाल, जैन, गाधी केशरवानी, गुजर आर्य तथा कसौधन आदि हैं। प्रत्येक उपवर्ग का अपना-अपना इतिहास है। प्रत्येक वर्ग के अपने मूल-पुरुष है। यह अवश्य है कि कतिपय वर्गों-उपवर्गो के रीति-रिवाज, शादी-ब्याह पद्धतियाँ, रहन-सहन, खान पान मे समानता परिलक्षित होती है, अतएव उन्हे अलग-अलग उपवर्ग कहना ठीक नही प्रतीत होता। अग्रवाल वैश्यो के मूल पुरुष श्री प्रमर्दन है तथा यज्ञसेनी श्री मोदन जी, प्राशुजी की सन्ताने हैं। इस सम्बन्ध मे अभी अधिक ऐतिहासिक खोज-बीन की आवश्यकता है। प्रसिद्ध पुस्तक 'आईन-ए-अकबरी' में बनियों के 'चौरासी' उपभेद लिखे हैं,

उनमे से 'यज्ञसेनी' भी एक है। कान्यकुब्ज और मध्यदेशीय की जाग गणना हुई है।

यहाँ पर यज्ञसेनी वैश्य वर्ग के कुछ यशस्वी समाज-सेवा स्मरणीय व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाना उपादेय होगा।

श्री स्वामी भजनानन्द सरस्वती महाराज

श्री एकरसानन्द आश्रम मैनपुरी, मुमुक्षु आश्रम शाहजहाँपुर परमार्थ आश्रम सप्तसरोवर हरिद्वार तथा परमार्थ निकेतन पो०- स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश, के संस्थापक महामण्डलेश्वर स्वर्गीय श्री भजनानन्द जी सरस्वती महाराज हमारे समाज के परम भक्त आध्यात्मिक तत्व-चिन्तक सन्त थे। उनका आशीर्वाद इस समाज को विशेष रूप से निरन्तर प्राप्त होता रहा है। वस्तुत श्री स्वामी भजनानन्द जी ने निरपेक्ष रूप से जनसेवा की है। उनके उपदेशों एव प्रवचनों का जन मानस पर बड़ा तीव्र प्रभाव पड़ता था। अपने आश्रम परमार्थ निकेतन ऋषिकेश के माध्यम से उन्होंने साधुओं एव तीर्थ-यात्रियों की बड़ी सेवा एव सहायता की है। नगरों एव ग्रामीण क्षेत्रों में उनके श्रद्धालु भक्तों की सख्या सर्वाधिक है। उन्होंने अपने ही साधनों एव प्रभाव से जन समुदाय को आध्यात्मिक लाभ पहुँचाया है। वे प्रख्यात दण्डी स्वामी नारदानन्द जी के गुरुभाई थे। उनके गुरु स्वामी एकरसानन्द जी ने उन्हें देश-सेवार्थ जीवन समर्पित करने की प्रेरणा प्रदान की थी। उन्होंने आजीवन अपने गुरु के आदेशों का पालन किया। अन्तत वे सेवा करते हुए ही ब्रह्मलीन हो गये। वस्तुत वे इस समाज की चिरस्मरणीय विभूति थे, है और आगे की पीढ़ियों के लिए भी बने रहेंगे।

श्री १०८ स्वामी नारदानन्द सरस्वती

अनन्त श्री विभूषित नैमिष आश्रम के व्यास-पीठाधीश्वर एव संस्थापक स्वामी श्री नारदानन्द सरस्वती यद्यपि यज्ञसेनी वैश्य वर्ग में सम्भूत नहीं थे, फिर भी उन्होंने यज्ञसेनी वैश्य समाज की विशेष सेवा की है। कानपुर से हरदोई होकर परम धाम नैमिष [सीतापुर] "तीरथ वर

नैमिष विछ्याना" पहुँचा जा सकता है। "समाज की उन्नति के लिये जो देश-काल-परिस्थिति मे सदैव अन्तर रहा है। जो समाज अपना हित करना चाहे उसे अपनी जीवन पद्धति अपनाने मे ही हित है। समाज-सुधार मे मनको मानसिक विकारों से दूर करना परमावश्यक है।" —यह कथन आध्यात्मिक दण्डी सन्यासी स्वामी नारदानन्द जी सरस्वती का है। सारे देश मे लगभग तीन सौ ऋषि आश्रम केन्द्रो मे ब्रह्मलीन स्वामी नारदानन्द सरस्वती जी का जन्म-दिवस श्रद्धा से मनाया जाता है। स्वामी नारदानन्द के सम्पूर्ण जीवन चरित्र पर एक पुस्तक भक्त भुवनेश्वरी दयाल ने लिखी है। 'नारद-वचनामृत' सरोजकुमारी द्वारा लिखित पुस्तक भी है।

हमारे समाज के वरेण्य कवि साहित्य-प्रणता, शिक्षाविद, अनेक पुरस्कारो मे अलङ्कृत तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अवकाश-प्राप्त अध्यक्ष डा० जगदीश गुप्त की माता जी स्वर्गीया श्रीमती रामादेवी ने अपनी आध्यात्मिक साधना स्वामी नारदानन्द के नैमिषारण्य आश्रम मे उनके सन्निकट रहकर उनकी शिष्या के रूप मे ही की थी। रामा जी के जीवन का उत्तर काल लगभग वही बीता। वे परम साध्वी, धार्मिक एव भक्त महिला थी। वे आस्था, विश्वास एव श्रद्धा की मूर्ति थी। स्वामी नारदानन्द जी के कार्यक्रमो एव यज्ञो के आयोजन मे वे सोत्साह भाग लेती थी। इसी प्रकार डा० जगदीश के बहनोई तथा भारतीय जीवन निगम के कालपुरुष पूर्व मैनेजर श्री राया प्रसाद गुप्त भी स्वामी नारदानन्द के परम भक्त है। उन्होंने नमिषारण्य मे कोषाध्यक्ष के रूप मे सेवा करते हुए अपने बहुमूल्य जीवन के अनेक वर्ष बिताए है। इनके अतिरिक्त हमारे समाज के परम जागरूक एव उत्साही सुलेखक गद्य कवि श्री सूरज प्रसाद जी गुप्त गुरुदेव नारदानन्द जी से सर्वात्मना सम्बद्ध रहे है। एक प्रकार से सूरज-बाबू का सारा परिवार एव उनके माध्यम से हमारे समाज के अनेक श्रेष्ठ जनो का स्वामी नारदानन्द जी का आशीर्वाद प्राप्त रहा है।

श्री जुगल किशोर गुप्त (दीनदयाल सेवक)

स्वर्गीय जुगल किशोर गुप्त सजग जातीय सेवक सामाजिक

एव धार्मिक कार्यकर्त्ता तथा आध्यात्मिक मनोभूमि के व्यक्ति थे। रात दिन पूजन-चिन्तन के आध्यात्मिक प्रभाव ने प्रौढ़ अवस्था में उन्हे संन्यास लेने की प्रेरणा प्रदान की। फलत वे नर्मदा नदी के तट पर (मण्डला मध्य प्रदेश) में रहने लगे। उन्हे वहाँ से छिन्दवाडा लाया गया। एकान्त साधना के फलस्वरूप उन्होने ललित मगलकारी विनय-माल पुस्तक की रचना की। इसमे 'विनय-माल' के अतिरिक्त भगवद्-भजन व नित्य कर्म से सम्बन्धित छन्दो का उत्तम सग्रह भी किया गया था। इस पुस्तक को छपवाकर बिना मूल्य वितरित किया गया। तदनन्तर उन्होने 'नर नारायण पुराण' (पृ० स० ३६०) लिखा। इसका मुद्रण सन १९५८–५९ मे हुआ। स्वाध्याय हेतु जनता के आध्यात्मिक लाभ की दृष्टि से इस ग्रन्थ को भी बिना मूल्य वितरित किया गया। एक साक्षात्कार मे उन्होने हमे बतलाया था कि उनके पुरखो की जन्म-भूमि कन्नौज थी। कालूरामजी के भाई लालाराम जी थे कालूराम जी के पुत्र गिरधारी लाल थे। उनके पुत्र हरिराम थे तथा हरिराम के पुत्र मोहनलाल जी थे। ये कन्नौज से छिबरामऊ विस्थापित हुये। वहाँ बिचले पुत्र हुलासराम सतचत सहित रहे। उनकी सन्तान आगरा और एक (छोटे पुत्र) हुलसीराम 'भातखेड़ी' भोपाल रियासत मे आकर बसे। उनके एक पुत्र देवीदास थे। उनके चार पुत्र परसराम, गप्पाजी, भवानीराम, ओंकार जी थे। ये चारो व्यक्ति सिहोर छावनी मे सतचत सहित विस्थापित हुए! इस प्रकार उन्होने अपनी वशावली दर्ज कराई। धार्मिक कार्यार्थ दान देते रहना उनका स्वभाव था।

स्वामी ओंकारानन्द जी सरस्वती

स्वामी ओंकारानन्द जी सरस्वती ने सन १९४१ ई० मे शिफ्ट इजीनियर के पद पर कार्य किया। १९४२ से वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर उन्होने भारत के सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा की। १९५०–५६ मे वे सर्वदेशीय सभा के अध्यक्ष रहे। एकरसानन्द आश्रम मैनपुरी मे श्री स्वामी विचारानन्द जी सरस्वती की गद्दी पर महन्त

पद पर आसीन है ।

लाला जगन्नाथ प्रसाद गुप्त

लाला जगन्नाथ प्रसाद गुप्त का जन्म कलकत्ते के एक बड़े वैश्य परिवार में १८१० ई० को, स्व० बाबू भगवान दीन गुप्त के यहाँ हुआ था । पिता के देहान्त हो जाने पर उन्हें लखनऊ आना पड़ा । सन् १९३० मे विद्याध्ययन छोड़ महात्मा गाधी की प्रेरणा से नमक बनाना और बेचना शुरू किया । फलस्वरूप अनेक बार उन्हें जेल जाना पड़ा । वे निःस्वार्थ भाव से देश-सेवा मे लगे रहे । यज्ञसेनी वैश्य जगत मे सूर्य की भाँति वे सर्वत्र परिचित थे । वे अनेक धार्मिक सस्थाओ के पदाधिकारी, सदस्य, सस्थापक, अध्यक्ष एव जन्मदाता थे । ऐसी विभूति से यज्ञसेनी वैश्य वर्ग गौरवान्वित है । लखनऊ मे यज्ञसेनी वैश्यो की जनगणना कराने का श्रेय उन्हेंही प्राप्त है । वे जीवन पर्यन्त यज्ञसेनी वैश्य सभा के अध्यक्ष पद पर कार्यरत रहे ।

श्री तुलसीराम जी

श्री तुलसी राम दानवाली गली, चौक मे रामआसरे की प्रसिद्ध फर्म में १९०३ से १५ अगस्त १९६२ तक रहे । शान्ति-प्रेमी, विनय-शील स्वभाव के कारण स्वजातीय बन्धुओ मे वे लोकप्रिय थे । यज्ञसेनी वैश्यसभा लखनऊ के वे आजीवन कोषाध्यक्ष रहे और कार्यकर्त्ताओ को प्रोत्साहित करते रहे । उनके पुत्र श्री आनन्द विहारी गुप्त भी जातीय उत्थान में सहयोगी तथा यज्ञसेनी वैश्य सभा लखनऊ के कोषाध्यक्ष रहे हैं ।

श्री सच्चिदानन्द गुप्त

श्री सच्चिदानन्द गुप्त का जन्म मार्च १९२८ मे जरवल, जिला-बाराबकी में बलिदानी स्व० श्री बद्रीशाह के यहाँ हुआ था । अपने प्रेममय व्यवहार, ओजस्वी वाणी, सच्चरित्र तथा उदारता के कारण वे बारह वर्षों तक कैण्टोनमेण्ट (छावनी) बोर्ड लखनऊ के सदस्य तथा उपाध्यक्ष रहे । ६ वर्षों तक नोटीफाइड एरिया कमेटी

आलमबाग के वे सयुक्त सचिव रहे । सन् १९६९ ई० मे तथा १९९० म विधान सभा, उत्तर प्रदेश के सदस्य चुने गये । सहकारिता-उपमंत्री तथा न्याय एव परिवहन उपमंत्री पद को वे सुशोभित कर चुके हैं। कल्याण सिह मन्त्रीमण्डल मे भी उपमंत्री पद पर रहे हैं ।

श्रीहनुमान प्रसाद गुप्त

श्रीहनुमान प्रसाद गुप्त का जन्म दिसम्बर १९०८, को स्व० श्री जगन्नाथ प्रसाद गुप्त लखनऊ के पुत्र के रूप मे हुआ था । उनकी विशेष रुचि समाज-सेवा एव जातीय उत्थान मे थी । सन् १९४६ ई० मे यज्ञसेनी वैश्य मन्दिर के निर्माण में उन्होने सक्रिय भाग लिया ।

श्री शिवप्रसाद गुप्त

श्री शिवप्रसाद गुप्त का जन्म नवम्बर सन १९२० को लखनऊ मे हुआ । उन्होने स्वजातीय बन्धुओ की विभिन्न प्रकार से सेवाएँ की । सामाजिक सस्थाओं मे उनका विशिष्ट स्थान है । अपने पूज्य माता पिता की स्मृति मे उन्होने एक धर्मशाले का निर्माण कराया ।

डा० शालिग्राम गुप्त

डा० शालिग्राम गुप्त हमारे समाज के देदीप्यमान रत्न है । वे अत्यन्त सेवा-परायण, उदार एव विनम्र है । जातीय उत्थान मे उनकी अभिरुचि जीवन के प्रारम्भ काल से ही रही है । समाज की उगती एव होनहार प्रतिभाओ को प्रोत्साहन देने एव समुचित सहायता करने म उन्हे विशेष आनन्द आता है । एक प्रकार से वे हमारे समाज के तन-मन के स्वास्थ्य के सरक्षक है । उनकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक है । चिकित्सा कार्य के अलावा साहित्य के पठन-पाठन मे भी उनकी दिलचस्पी रहती है। वे एक बडे परिवार के दायित्व का निर्वाह कर रहे है । परिवार के प्राय सभी सदस्य सुसस्कृत, सुशिक्षित तथा कर्तव्यनिष्ठ है । उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री सुशील कुमार का विवाह कानपुर के ही विशिष्ट नागरिक तथा

समाज के शुभचिन्तक गुणग्राही गुणज्ञ श्री दौलतराम गुप्त की पुत्री के साथ हुआ है। डाक्टर साहब की पौत्री एवं श्री सुशील कुमार की पुत्री कुमारी श्वेता ने पूर्व मेडिकल परीक्षा (टेस्ट) उत्तीर्ण कर श्रीगणेश-शंकर विद्यार्थी मेडिकल कालेज में प्रवेश प्राप्त किया है।

डा० शालिग्राम जी का जन्म गत २० अक्टूबर १९२८ को मीरपुर छावनी कानपुर में हुआ था। उनके पूज्य पिता जी का नाम श्री छोटे लाल था। २० वर्ष की अवस्था में २४ मई १९४८ को उनका विवाह हो गया था। परिश्रम-पूर्वक अध्ययन करते हुए उन्होंने सन १९५६ में लखनऊ मेडिकल कालेज से एम बी बी एस की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण कर उपाधि प्राप्त की। सर्वप्रथम प० मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज, इलाहाबाद में वे सेवारत हुए। इसके बाद राजकीय बीमा अस्पताल कानपुर में वे नियुक्त हो गये। शीघ्र ही वे कण्टोनमेण्ट बोर्ड कानपुर द्वारा सचालित हास्पिटल के प्रधान चिकित्सक के पद पर नियुक्त हो गये। यहाँ अनेक वर्षों तक सेवा करने के बाद सन १९८८ में इन्होंने अवकाश प्राप्त कर लिया। इस समय वे निजी प्रेक्टिस द्वारा जनता की सेवा कर रहे हैं। इसके साथ ही समय-समय पर जातीय उत्थान के कार्यक्रमों में भी वे शामिल होते रहते हैं। उनके सयोजकत्व में ही कानपुर के यज्ञसेनी वैश्य बन्धु समाज का होली मिलन समारोह गत २१ मार्च सन् १९९३ को सम्पन्न हुआ, जिसमें सर्वश्री भीखाराम महावीर प्रसाद फर्म के सचालक श्री रामशंकर गुप्त के सहयोग से समाज के अनेक गण्यमान्य महानुभावों का अभिनन्दन किया गया। इसी प्रकार लखनऊ में युवक यज्ञसेनी वैश्य बन्धु समिति उ० प्र० के तृतीय वार्षिकोत्सव के अवसर पर आयोजित होली-मिलन समारोह में भी डाक्टर साहब ने सोत्साह भाग लिया तथा अनेक तेजस्वी एवं मेधावी छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत किया। डाक्टर साहब का विश्वास आत्म-प्रचार में नहीं, प्रत्युत सेवा में है।

श्री महादेव प्रसाद गुप्त

राष्ट्र सेवक श्री महादेव प्रसाद जी गुप्त का जीवन राष्ट्र की

सेवा में समर्पित रहा [illegible] १ [illegible] कांग्रेस [illegible] [illegible] राष्ट्रीय आन्दोलनों में वे कई बार गिरफ्तार किये गये। उनके त्याग और बलिदान का सर्वाधिक प्रशंसनीय तथ्य यह है कि विषम आर्थिक स्थिति में भी, राजनीतिक पीड़ितों को दी गई पेन्शन उन्होंने स्वीकार नहीं की और न ताम्रपत्र ही ग्रहण किया।

श्री बालमुकुन्द गुप्त आर्य

श्री बालमुकुन्द गुप्त आर्य यज्ञसेनी वैश्य समाज छिन्दवाड़ा तथा मध्यप्रदेश के अध्यक्ष हैं। युवावस्था में उन्हें पहलवानी तथा काव्य रचना का शौक था। मध्यप्रदेश यज्ञसेनी वैश्य समाज के अध्यक्ष पद पर रहकर वे सामूहिक विवाह' का सफल आयोजन छिन्दवाड़ा में कर चुके हैं। वे नगरपालिका छिन्दवाड़ा के भूतपूर्व पार्षद हैं। वे एक कुशल व्यवसायी तथा समाज-सेवी व्यक्ति हैं। सामाजिक कार्यों में वे पूरा-पूरा सहयोग देते आ रहे हैं। भारतीय जनता पार्टी के वे कर्मठ कार्यकर्ता हैं विभिन्न संस्थाओं से वे जुड़े हुए हैं। २६ जून १६७५ को उन्हें भारतीय जनता पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता होने के कारण मीसा में गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद गत २७ जनवरी १६७७ को छिन्दवाड़ा जेल से उन्हें रिहा किया गया।

श्री बाबूलाल महाजन

नन्दा नगर, इन्दौर-निवासी श्री बाबूलाल जी, नन्दा मिल इन्दौर से निवर्तमान होने के पूर्व से ही सामाजिक सेवा-कार्यों में सलग्न रहे हैं। वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कराने में वे सदैव उत्साह-पूर्वक तत्पर रहते हैं।

श्री दुर्गाशंकर गुप्त

श्री दुर्गाशंकर गुप्त देवास (म०प्र०) के प्रसिद्ध एडवोकेट हैं। यज्ञसेनी वैश्य समाज के विभिन्न पदों पर रहकर उन्होंने सेवा-कार्यों में रुचि ली है। उनके नेतृत्व में देवास (मध्य प्रदेश) में प्रथम सामूहिक

विवाह व परिचय-सम्मेलन सम्पन्न हुआ था।

स्व० श्री मदनलाल गुप्त के पुत्रों तथा श्री रतनलाल गुप्त आदि के सहयोग से देवास-स्थित यज्ञसेन समाज के 'लक्ष्मी नारायण मन्दिर' का जीर्णोद्धार इन्होंने कराया था।

श्री प्रेमनारायण गुप्त

मध्यप्रदेश के निमाड अन्चल के भीकनगाँव मे 'प्रेम मेडिकल-स्टोर्स' के सचालक श्री प्रेमनारायण जी मध्यप्रदेश यज्ञसेनी वैश्य समाज के सक्रिय कार्यकर्ता है। वे भीकनगाँव नगरपालिका के सदस्य चुने गये थे और उसके उपाध्यक्ष पद पर कार्यरत रहे थे।

डा० कामेक्षा प्रसाद गुप्त

राजनाँदगाँव (म०प्र०) के डा० कामेक्षा प्रसाद गुप्त छत्तीसगढ अचल के यज्ञसेनी वैश्य समाज के प्रसिद्ध प्रतिनिधि कार्यकर्ता है। 'दक्षिण भारतीय श्री यज्ञसेनी वैश्य समाज' के सगठन का सविधान इन्होंने तैयार किया था। छत्तीसगढ यज्ञसेनी वैश्य समाज सगठन म श्री चन्द्रनाथ सेवक (निवर्तमान न्यायाधीश--सक्ती) अध्यक्ष, श्री शम्भू-दयाल गुप्त (जाँजगीर) व श्री सुरजबली गुप्त, (नैला) उपाध्यक्ष, श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त, छिट्ठनलाल गुप्त (राजनाँदगाँव), डा० कामेक्षा प्रसाद गुप्त (राजनाँदगाँव) सगठन सचिव तथा श्री रामप्रसाद गुप्त कोषाध्यक्ष थे। इस सगठन के सयोजन का कार्य इनके ही द्वारा सम्पन्न हुआ था।

श्रीगयाप्रसाद गुप्त

श्री गयाप्रसाद गुप्त के पूर्वज बिल्हौर (जिला-कानपुर) के रहने वाले थे पर उनके पिता जी हमीरपुर में रहने लगे थ जहाँ उनका जन्म हुआ। वही से उनका शिक्षण भी सम्पन्न हुआ। स्नातक होने के बाद वे कानपुर आ गये। यहाँ सन १८७१ से स्थापित 'बाम्ब-

म्यचयल [illegible] एक बीमा कम्पनी में अभिकर्ता के रूप में कार्य करने लगे। बाद में इसी कम्पनी में सुपरिन्टेण्डेण्ट आफ एजेन्सीज के पद पर प्रोन्नत कर दिये गये। कुछ समय बाद भारत सरकार ने प्राइवेट बीमा कम्पनियों को बन्द कर, भारतीय जीवन बीमा कारपोरेशन का गठन किया। भारतीय जीवन बीमा कारपोरेशन ने उन्हें असिस्टेण्ट ब्रांच मैनेजर बना दिया। उन्नाव झाँसी एवं इलाहाबाद में उनकी सेवाओं का लाभ उठाकर उन्हें सन १९६० में कानपुर बुला लिया गया और ब्रांच नं० ३ में उन्हें मैनेजर बना दिया गया। यहाँ सफलता-पूर्वक कर्तव्य पालन करते हुए ६० वर्ष की अवस्था में सन् १९७० में उन्होंने अवकाश प्राप्त कर लिया।

इस समय वे सपरिवार कानपुर में अपने ही आवास में रहते है। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री उमेश जी यू पी औद्योगिक कन्सलटेंण्टस अधिकारी है। द्वितीय पुत्र श्री दिनेश जी स्टेट बैंक आव इण्डिया में सेवारत है। इन दो पुत्रो के अतिरिक्त एम ए उत्तीर्ण एक पुत्री भी है जिसका विवाह आगरा के विख्यात स्वजाति-सेवक आयुर्वेदाचार्य वैद्यराज स्व० जगन्नाथ के सुपुत्र डा० रमेश गर्ग एम बी बी. एस के साथ हुआ है। डा० रमेश पहले सहारनपुर में हेल्थ आफीसर थे। इस समय वे नैनीताल जिले के उच्चतर स्वास्थ्य केन्द्र में मेडिकल आफिसर है।

श्री गयाप्रसाद जी की पौत्री एवं श्री दिनेश कुमार की पुत्री कुमारी मीनू ने गत वर्ष प्रथम श्रेणी में इण्टर परीक्षा उत्तीर्ण की थी। युवक यज्ञसेनी बन्धु समिति उ०प्र० ने अपने तृतीय वार्षिकोत्सव के अवसर पर आयोजित होली-मिलन समारोह में गत १७ अप्रैल १९८३ को, लखनऊ में कुमारी मीनू को उनकी इस अनुकरणीय सफलता के लिये विशेष रूप से पुरस्कृत एवं सम्मानित किया था। कुमारी मीनू की माता श्रीमती अभिलाषा जी भी उच्च शिक्षा-प्राप्त है। वे एम ए. बी एड है।

श्री गयाप्रसाद जी स्वभावत एक नैष्ठिक धार्मिक पुरुष है। वे परम आस्थावान साधक है। नैमिषारण्य तप स्थली में रहकर उन्होंने अनेक वर्षों तक तप किया है। वे स्वामी नारदानन्द के अत्यन्त

विश्वास-पात्र अनुगामी रहे हैं। नैमिषारण्य आश्रम के वार्षिकोत्सव, आषाढ़-श्रावण के चातुर्मासोत्सव तथा रुणदिवर्षीय सात्विक महायज्ञ के अवसर पर होने वाले व्यवस्था व्यय का लेखा-जोखा एक कुशल कोषाध्यक्ष के रूप में श्री गया प्रसाद जी ही रखते थे। कानपुर में निवास में स्वामी नारदानन्द जी अपने अनुरागी भक्त श्री गयाप्रसाद जी द्वारा बनाई गई व्यवस्था को ही मान्यता देते थे और साथ उन्हींकी मोटर का प्रयोग करते थे।

'सबहिं मानप्रद आप अमानी' स्वभाव के श्री गयाप्रसाद जी का कानपुर में सर्वप्रिय व्यक्तित्व है। वे छोटे बड़े सबसे बड़े प्रेम से मिलते हैं। दशहरा - दीवाली-होली आदि पर्वो के अवसर पर वे घर-घर जाकर सभीका अभिनन्दन करते हैं। वे 'सादा जीवन उच्च-विचार' के प्रतीक पुरुष हैं। भारतीय जीवन बीमा निगम विभाग ने अनेक बार प्रशस्ति-पत्र देकर उनकी कर्तव्यनिष्ठ सेवाओं को सम्मानित किया है। गत २१ मार्च १९८३ को कानपुर के यज्ञसेनी वैश्य समाज द्वारा आयोजित होली मिलन समारोह में उनका विशेष रूप से सम्मान एवं अभिनन्दन किया गया था।

कई वर्ष-पूर्व राजगिरि (बिहार) में अखिल भारतीय जातीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ था। इसमें सारे देश के सभी घटकों के स्वजाति-बन्धु पधारे थे। यह सम्मेलन ४ दिनों तक चला था और उसमें जातीय उत्थान के उपयोगी प्रस्ताव पारित हुए थे। इसमें श्री गयाप्रसाद जी ने अपनी उपस्थिति से कानपुर का जोरदार प्रतिनिधित्व किया था। हटिया (कानपुर) निवासी स्व० श्री रामचन्द्र गुप्त ने भी इसमें भाग लिया था।

ऊपर हमने राजनीति, समाज, अध्यात्म एवं पत्रकार जगत के कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों की चर्चा की है, जिन्होंने यज्ञसेनी वैश्य समाज को अपने कृतित्व से गौरव प्रदान किया है। अब हम कुछ ऐसे साहित्य-प्रणेताओं का परिचय दे रहे हैं, जिनकी रचनाओं से यज्ञसेन वैश्य समाज का देश में महत्त्व बढ़ा है।

डा० जगदीश गुप्त

यज्ञसेनी वैश्य समाज के गौरव, साहित्य-मनीषी डा० जगदीश गुप्त, नागवासुकि, दारागंज, प्रयाग (इलाहाबाद), ने लगभग ४८ पुस्तकों से हिन्दी साहित्य के कोश को समृद्ध बनाया है। कवि-लेखक सम्पादक-प्रकाशक-आलोचक डा० जगदीश गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ल तृतीया संवत् १९८१ को श्री शिवप्रसाद गुप्त शाहाबाद हरदोई में हुआ था। उनकी माता श्री रामादेवी जी, पति के स्वर्गवास के पश्चात १९३९ में नैमिषारण्य में, पूज्य श्री नारदानन्द जी के आश्रम में निवास करने लगी थी।

डा० जगदीश की अभिरुचि चित्र-रचना, रेखाकन, मृण्मूर्ति संग्रह यायावरी, मैत्री और स्वाध्याय में है। नयी कविता के प्रवर्तक एवं समीक्षक के रूप में भी वे जाने जाते हैं। इन्होंने अनेक साहित्यिक पुस्तकों की रचना की है, जिनमें 'युग्म' (चित्रांकित काव्य), हिमविद्ध शब्द-दंश, नाव के पाँव, शम्बूक, छन्दशती, आदिम एकान्त, गोपा-गौतम बोधि-वृक्ष, अयस्य काव्य ग्रन्थ, गीति-काव्य-संग्रह, काव्यसेतु कवितान्तर नई कविता, नवधा (अज्ञेय के साथ सम्पादित), उद्धव-शतक, कुम्भ दर्शन का आलेखन, 'गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' (शोधग्रंथ), प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला भारतीय कला के पद चिह्न, नयी कविता (स्वरूप और समस्याएं) रीतिकाव्य कृष्ण-शक्ति-काव्य तथा केशवदास (आलोचना) अधिक प्रसिद्ध है। लेखक और राज्य स्नातकोत्तर हिन्दी-शिक्षण, कुछ स्मारिकाएं परिमल, रजत पर्व आदि प्रतिवेदन सम्पादित किये हैं। "नई कविता पत्रिका— १ से ८ अंक (१९५४ से ६४ तक का सम्पादन डा० जगदीश जी ने ही किया है।

मध्यप्रदेश शासन ने 'मैथिलीशरण गुप्त' राष्ट्रीय सम्मान से उन्हें विभूषित किया है। साहित्यकार को किसी जाति-क्षेत्र में नहीं बाँधा जा सकता है, क्योंकि उसका कार्य मानव-मात्र के लिये होता है। वे राष्ट्र-भाषा हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, चित्रकार, पुराविद्, समीक्षक ही नहीं—

नई कविता' के प्रवर्तकों में से एक हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के हिन्दी विभाग के वे अवकाश-प्राप्त अध्यक्ष हैं। 'हिन्दुस्तानी' त्रैमासिक पत्रिका के प्रधान सम्पादक तथा हिन्दुस्तानी एकाडमी के पूर्व कोषाध्यक्ष हमारे यज्ञसेनी वैश्य समाज के देदीप्यमान नक्षत्र हैं।

श्री ब्रजमोहन गुप्त 'इन्द्रनारायण'

श्री ब्रजमोहन गुप्त 'इन्द्रनारायण' का जन्म, श्री जुगुल किशोर गुप्त (दीनदयाल सेवक) के यहाँ, मण्डी सिहोर (मध्यप्रदेश) में, फाल्गुन शुक्ल द्वितीया, विक्रम संवत् १९९३ तदनुसार १४ मार्च १९३६ शुक्रवार, को हुआ था। उनका परिवार, उनकी दो वर्ष की अवस्था में ही, मण्डी सिहोर से आकर छिन्दवाडा (म०प्र०) में रहने लगा था। वहीं उनका यथाविधि पालन-पोषण एवं शिक्षण हुआ।

छात्र-जीवन के प्रारम्भ काल में ही उनमें चित्रांकन की प्रवृत्ति जाग्रत हो गई थी। इसके साथ ही कविता-लेखन की ओर भी उनकी अभिरुचि थी। उस समय मद्यनिषेध का आन्दोलन चल रहा था। मद्यपान है नाशवान' की समस्या-पूर्ति उन्होंने ऐसे प्रभावशाली रूप में की थी कि उसे सुनकर सभी 'वाह वाह' करने लगे। फलतः इस समस्या-पूर्ति पर उन्हें 'पुरस्कार' दिया गया। इससे उत्साहित होकर उनकी अभिरुचि कविता-लेखन की ओर विशेष रूप से हो गई और वे कविताएँ लिखने लगे।

कविता-लेखन के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वे सेवा कार्य करने लगे और समाज की पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने लगे। इस प्रकार वे अनेक पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ गये। निम्नलिखित सामाजिक एवं जातीय पत्रों से वे विशेष रूप से सम्बन्धित हैं—

यज्ञसेनी वैश्य-बन्धु, आगरा, यज्ञसेन-युवक, लखनऊ, यज्ञसेनी वैश्य समाज पत्रिका, कानपुर, वैश्य उत्थान, मेरठ, हितकारिणी, सागर (म०प्र०), अग्रोहा-तीर्थ, दिल्ली तथा 'यज्ञकाम' कानपुर।

तरुणाई में चित्रांकन में उनकी गहरी लगन बाद में क्रमशः

क्षीण होती गई और साहित्यिक अध्ययन - चिन्तन तथा लेखन के प्रति उनकी अभिरुचि अधिक सजग हो गई। उनके दो पुत्र तथा दो पुत्रियां है। ज्येष्ठ पुत्र चि० दिनेश शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय छिन्दवाडा मे सहायक प्राध्यापक है। छोटे पुत्र को छोडकर सभी का विवाह हो गया है। दो काव्य-सग्रह क्रमश 'काव्यार्चन' (१९७६) तथा 'एक और यात्रा' (१९८२) मे प्रकाशित हुए है।

श्री जय शकर प्रसाद जन्मशती-विशेषाक १९८९ का उन्होने सम्पादन किया था। प्रारम्भ मे अब तक लिखे गये लेखो का सकलन इस पुस्तक 'गद्य-कल्प' मे किया जा रहा है। 'यजसेनी वैश्य समाज पत्रिका-कानपुर' के सम्पादक मण्डल मे भी वे रहे है। लगभग चार वर्ष बाद, निवर्तमान की स्थिति मे, समाज एव साहित्य की अधिकाधिक सेवा करने का उनका दृढ सकल्प है। साहित्य-मनीषियो से उनके निकट के सम्पर्क है, जिनका नित्य प्रति विस्तार होता जा रहा है। भविष्य मे जातीय एव सामाजिक सेवा कार्यो मे वे अधिक दत्तचित्त होना चाहते है

श्री रामनाथ गुप्त

श्री रामनाथ गुप्त का जन्म, हमीरपुर जिले मे स्थित महिमा मयी भगवती भुइया रानी देवी के आशीर्वाद-स्वरूप, सन् १९१० ई० मे कोराई (जिला-फतेहपुर, उत्तर प्रदेश) मे हुआ था। उनके पूज्य पिता श्री रामचरण लाल जी अपने कर्मठ जीवन के प्रारम्भ काल मे वर्षो पूर्व पैदल चलकर (उन दिनो रेल-पथ उस क्षेत्र मे नही बन पाया था) महाराष्ट्र (बरार) मे जिला अकोला मे स्थित लाखपुरी पहुँचे थे। वहाँ के निवासियो ने उन्हे वही रोक कर अपना व्यवसाय करने का उनसे आग्रह किया और अपेक्षित सहयोग भी दिया। इस पर वही उन्होने अपना व्यवसाय शुरू किया। चूँकि परिवार बडा था, अत परिवार के मुख्य सदस्य कोराई मे ही रहते थे। रामनाथ जी ने कोराई मे ही रहकर ही सन् १९३० मे गवर्नमेण्ट हाई स्कूल, फतेहपुर से, हाई स्कूल की परीक्षा [illegible] की और डी ए वी कालेज कानपुर से सन् १९३४ मे

बी ए की उपाधि प्राप्त की।

उत्तर प्रदेश का दौरा करते हुए जब महात्मा गांधी सन् १९२९ म फतहपुर पधारे, रामनाथ जी ने अपनी कविता के साथ उन्हें अपने हाथ से काते गये सूत की माला पहनाई और उनका अत्यन्त प्रेम पूर्ण आशीर्वाद प्राप्त किया।

श्री रामनाथ जी छात्रावस्था से ही देश-प्रेम एवं जाति-प्रेम से उद्भावित थे। उन दिनों हिन्दी में छायावाद के प्रवर्तक श्री जय शकर 'प्रसाद' जी के भान्जे श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त काशी से ही 'कान्य-कुब्ज वैश्य सरक्षक'– शीर्षक मासिक पत्र निकाल कर जातीय जागरण कर रहे थे। इसमे बिहार के गण्यमान्य व्यक्ति श्री बिहारीलाल, श्री भोलानाथ गुप्त, श्री बनाकी शाह, श्री हीरालाल शाह, श्री देवी-प्रसाद (कलकत्ता) प्रभृति नेता भी उनके सहयोगी थे। श्री रामनाथ जी ने फतेहपुर-कालीन छात्रावस्था मे ही 'कान्यकुब्ज वैश्य सरक्षक मे' लिखना शुरू कर दिया था। उस समय वे 'सरक्षक' के नियमित लेखक थे। इसी पत्र से उनमे लेख लिखने की रुचि जाग्रत हुई और उन्होंने राष्ट्र एवं राष्ट्र-सेवा का व्रत लिया। सन् १९३४ मे स्नातक होने के बाद वे एम ए. करने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय गये। इस अवसर पर इलाहाबाद से ही प्रकाशित दैनिक 'भारत' से सयोग वश उनका सम्बन्ध हो गया। वहाँ काम करते हुए ही सन् १९३४ म अखिल भारतीय कांग्रेस महाधिवेशन म शामिल होने के लिए अपने बहनोई श्री आर एन गुप्त के साथ बम्बई चले आये। यहाँ से लोकमान्य बालगगाधर तिलक के सहयोगी काका खाडिलकर दैनिक 'नवा काल' मराठी मे और 'स्वाधीन भारत' हिन्दी म निकालते थे। उसमे प० बचन शर्मा 'उग्र' भी सम्बन्धित थे। बम्बई मे कांग्रेस महाधिवेशन में शामिल होने के बाद रामनाथ जी ने 'स्वाधीन भारत' के सम्पादन में योग देना प्रारम्भ किया। इसी दरमियान बम्बई मे ही उनका सम्पर्क महात्मा गांधी के आत्मचरित 'सत्य के प्रयोग' तथा उनकी अन्य पुस्तको के अनुवादक, 'त्यागभूमि' मासिक पत्र के पूर्व सम्पादक

एवं राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक श्री हरिभाऊ उपाध्याय से होगया। वे रामनाथ जी को अपने साथ ब्यावर (अजमेर-राजस्थान) ले गये, जहाँ से उपाध्याय जी 'राजस्थान' पत्र सम्पादित एवं प्रकाशित करते थे। 'राजस्थान' मे काम करते हुए ही रामनाथ जी को तत्कालीन बी बी एण्ड सी आई रेलवे मे सेवा करने का नियुक्ति पत्र मिला। संयोगवश इसी समय अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा स्थापित दैनिक 'प्रताप' (कानपुर) के सम्पादक श्री हरिशंकर विद्यार्थी का तार 'प्रताप' के सम्पादन में सम्मिलित होने के लिये मिला। 'हरि इच्छा बलीयसी', रामनाथ जी बी बी एण्ड सी आई की अच्छी सेवा वृत्ति की उपेक्षाकर 'प्रताप' के सम्पादन से कानपुर आकर जुड गये। यहाँ काम करते हुए ही सन् १९४२ से उन्होंने साप्ताहिक 'रामराज्य' का सम्पादन एवं प्रकाशन मित्रो के सहयोग से शुरू किया, जो शीघ्र देश भर मे सर्वप्रिय हो गया। यह पत्र महात्मा गाधी के सिद्धान्तो का प्रचारक रहा है। उसके दैनिक सस्करण का विमोचन लोकनायक श्री जय प्रकाश नारायण ने किया था।

सन् १९४२ में द्वितीय विश्व-युद्ध चल रहा था और महात्मा गाधी एव काग्रेस नेतृत्व युद्ध-विरोधी आन्दोलन चला रहे थे। युद्ध का विरोध करने के कारण 'रामराज्य' को अग्रेजो का कोपभाजन बनना पड़ा, पर वह अपनी नीति पर अटल रहा। उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने वार्षिक सम्मेलन बहराइच मे उनकी साहसिक सम्पादन-क्षमता तथा हिन्दी-सेवा का सम्मान कर उन्हे २७ नवम्बर १९७६ को सम्पादकाचार्य प० अम्बिका प्रसाद बाजपेयी की स्मृति मे निर्धारित प्रथम स्वर्णपदक देकर अलंकृत किया।

रामनाथ जी हिन्दी गद्य-पद्य के समर्थ रचनाकार है। गाधी और गाधीवाद का प्रभाव उनकी रचनाओ मे स्पष्ट है। राष्ट्रीय भाव भूमि पर विरचित 'आह्वान' पुस्तक की सर्वत्र उन्मुक्त प्रशसा हुई है। इसके अध्ययन से हमारे स्वातन्त्र्य युद्ध के इतिहास के पृष्ठ मुखर हो उठे हैं उनकी दूसरी पुस्तक कृष्ण-विरह [illegible] राम के समान

एव राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक श्री हरिभाऊ उपाध्याय से होगया। वे रामनाथ जी को अपने साथ ब्यावर (अजमेर-राजस्थान) ले गये, जहाँ से उपाध्याय जी 'राजस्थान' पत्र सम्पादित एव प्रकाशित करते थे। 'राजस्थान' में काम करते हुए ही रामनाथ जी को तत्का लीन बी बी एण्ड सी आई रेलवे में सेवा करने का नियुक्ति पत्र मिला। सयोगवश इसी समय अमर शहीद गणेशशकर विद्यार्थी द्वारा स्थापित दैनिक 'प्रताप' (कानपुर) के सम्पादक श्री हरिशकर विद्यार्थी का तार 'प्रताप' के सम्पादन में सम्मिलित होने के लिये मिला। 'हरि इच्छा बलीयसी', रामनाथ जी बी बी एण्ड सी आई की अच्छी सेवा वृत्ति की उपेक्षाकर 'प्रताप' के सम्पादन में कानपुर आकर जुड गये। यहाँ काम करते हुए ही सन् १९४२ से उन्होंने साप्ताहिक 'रामराज्य' का सम्पादन एव प्रकाशन मित्रों के सहयोग से शुरू किया, जो शीघ्र देश भर में सर्वप्रिय हो गया। यह पत्र महात्मा गाधी के सिद्धान्तों का प्रचारक रहा है। उसके दैनिक सस्करण का विमोचन लोकनायक श्री जय प्रकाश नारायण ने किया था।

सन् १९४२ में द्वितीय विश्व-युद्ध चल रहा था और महात्मा गाधी एव काग्रेस नेतृत्व युद्ध-विरोधी आन्दोलन चला रहे थे। युद्ध का विरोध करने के कारण 'रामराज्य' को अग्रेजों का कोपभाजन बनना पडा, पर वह अपनी नीति पर अटल रहा। उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने वार्षिक सम्मेलन बहराइच में उनकी साहसिक सम्पादन-क्षमता तथा हिन्दी-सेवा का सम्मान कर उन्हे २७ नवम्बर १९७६ को सम्पादकाचार्य प० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी की स्मृति में निर्धारित प्रथम स्वर्णपदक देकर अलकृत किया।

रामनाथ जी हिन्दी गद्य-पद्य के समर्थ रचनाकार है। गाधी और गाधीवाद का प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट है। राष्ट्रीय भाव-भूमि पर विरचित 'आह्वान' पुस्तक की सर्वत्र उन्मुक्त प्रशसा हुई है। इसके अध्ययन से हमारे स्वातन्त्र्य युद्ध के इतिहास के पृष्ठ मुखर हो उठते हैं उनकी दूसरी पुस्तक कृष्ण विरह विपल राधा के समान

आकुल, आर्त भक्ति-वियोगिनी मीराबाई की परम्परा में विरचित 'प्राणाञ्जलि' है। इसमें उन्होंने, भगवान् राम के प्रति अपनी विमुक्त आत्मा की विरह-वेदना अत्यन्त मर्मस्पर्शी कोमलकान्त पदावली में निवेदित की है। वस्तुत यह परमात्मदेव के पाद-पद्मों में विलीन होने के लिये उनकी समर्पणशीला आत्मा की आर्त गुहार है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त उनके द्वारा लिखित प्रचुर साहित्य अभी तक अप्रकाशित है। डा० शालिग्राम गुप्त के माध्यम से कानपुर के यज्ञसैनी बन्धुओं का सहयोग रामनाथ जी को निरन्तर प्राप्त होता रहा है। आशा है आगे भी हमारा समाज उनसे इसी प्रकार लाभान्वित होगा।

भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्ध में 'रामराज्य' पत्र द्वारा जन-जागरण करने के उपलक्ष्य में, अन्य ख्यातिप्राप्त पत्रकारों के साथ, उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९८१ में उन्हें सम्मानित कर २० हजार रुपयों की धनराशि के साथ प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया था। बिहार और उत्तर-प्रदेश की अनेक संस्थाओं ने समय-समय पर उन्हें सम्मानित किया है। पत्रकार-प्रवर स्वर्गीय पं० बनारसी दास चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'रामराज्य' के 'पत्रकार' विशेषांक ने श्रमजीवी पत्रकारों की भी सेवा की है। कानपुर में आयोजित यज्ञसैनी वैश्य बन्धुओं के होली-मिलन समारोह में २१ मार्च १९८३ को तथा लखनऊ के यज्ञसैनी बन्धुओं द्वारा किये गये होली-मिलन उत्सव में १७ अप्रैल १९८३ को उन्हें विशेष रूप से अभिनन्दित एवं सम्मानित किया गया।

श्री ओमप्रकाश गुप्त 'प्रकाश'

श्री ओमप्रकाश गुप्त 'प्रकाश' का जन्म नौबस्ता, कानपुर में हुआ था। बाद में उनका परिवार लखनऊ चला गया। सम्प्रति वे घसियारीमण्डी लखनऊ में रह रहे हैं और वहीं डाक महाध्यक्ष-कार्यालय में सेवा-कार्यरत हैं। वे विशेष रूप से फिल्म-पत्रकार के रूप में भी कार्य कर रहे हैं। अपने इसी कार्य के अनुरूप वे साक्षात्कार एवं भेंट वार्ताएँ-कर लेख लिखते रहते हैं। लखनऊ से प्रकाशित 'यज्ञसेन युवक' तथा 'यज्ञसैनी वैश्य समाज' पत्रिका के सम्पादकीय मण्डल में भी वे रहे हैं।

वे यज्ञसेनी समाज के उत्साही कार्यकर्ता है ।

कुछ अन्य यशस्वी लेखक

यज्ञसेनी वैश्य वर्ग के कुछ अन्य कवि-लेखक भी है, जिनके नाम इस प्रकार है :—

श्री कल्लूमल 'रुद्र' कानपुर, श्री जगदीश प्रसाद (यज्ञसेनी वैश्य जाति के इतिहास के लेखक), कविवर, श्रीकृष्ण गुप्त, बानवाली गली, लखनऊ, श्री बनवारी लाल गुप्त, शास्त्री-छिबरामऊ, डा० रामस्वरूप आर्य-बिजनौर, श्री सुरेन्द्रमोहन यज्ञसेनी लखीमपुर-खीरी, श्री चैनराम गुप्त, छिन्दवाड़ा, उपन्यास-लेखिका श्रीमती चन्द्रकान्ता-देवी गुप्ता, कु० सविता गुप्ता सरायमीरा-कन्नौज, श्रीमती पुष्पा गुप्ता लखनऊ ।

धार्मिक/सांस्कृतिक

- पर्व लक्ष्मी-पूजन का—
- सामाजिक पर्व-प्रसंग का पन्ना—

पर्व लक्ष्मी-पूजन का-

पर्व-त्यौहार, ऋतु-कालचक्र भगवान् के भक्ति-पूर्ण आराधन और स्मरण के लिये होते है। प्रभु की प्रत्येक रचना सृष्टि मात्र के योग-क्षेम के लिये होती है। कालचक्र मे होने वाले परिवर्तनो मे ही काय का ज्ञान माना जाता है। एक वर्ष मे ये ऋतुएँ इस प्रकार होती है— शिशिर अर्थात् माघ-फाल्गुन, 'बसन्त' अर्थात् चैत्र-बैशाख, 'ग्रीष्म अर्थात ज्येष्ठ-आषाढ, 'वर्षा' अर्थात् श्रावण-भाद्रपद, 'शरद्'—अर्थात आश्विन-कार्तिक, 'हेमन्त' अर्थात् मार्गशीर्ष-पौष। जो प्रभु तीन तत्वो अग्नि-शीत-वायु के द्वारा विश्व पालते और सूर्य, चन्द, नक्षत्र, आकाश पवन के रूप में विश्व धारण करते है— उन्हीकी लीला के अर्चन-वन्दन हेतु पर्व-त्यौहार मनाये जाते है।

कुछ पर्व श्रीराम की लका विजय के स्वागत मे, कुछ समुद्र-मन्थन से उत्पन्न लक्ष्मी-पूजन के रूप मे, कुछ अक्षय कृषि उपज की चाह मे मनाए जाते है। परन्तु इन सभी पर्व-उत्सवों का उद्देश्य लक्ष्मी रूपी सम्पदा धन-ऐश्वर्य पाने की चाह ही होती है। यहाँ तक कि इन्द्र भी स्वरचित महालक्ष्म्यष्टक मे कल्याणकारिणी, वरदायिनी महालक्ष्मी से सदा प्रसन्न रहने की प्रार्थना करते है। आचार्य शकर भी अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण के अतिथि बन, उसके दुर्दिन को देख रो उठते हैं। उनका हृदय दया व करुणा से भर आता है। वे तत्काल ऐश्वर्य व सुख की अधिष्ठात्री भालेश्वरी महालक्ष्मी को सम्बोधित कर, करुणा-पूर्ण कोमलकान्त स्तोत्र की रचना कर, त्रिभुवन की आराध्या देवी लक्ष्मी को प्रकट हो उस दरिद्र ब्राह्मण परिवार को सम्पन्न, सबल एव धनवान बनाने की प्रार्थना करते है। यह असम्भव होते हुए भी करुणा-विगलित कण्ठ से उच्चरित आचार्य शकर के इस स्तोत्र से द्रवित हो भगवती अन्तर्ध्यान हो गई और उस दरिद्र ब्राह्मण के यहाँ स्वर्ण आँवले की वर्षा हुई

दीपावली के पर्व पर महालक्ष्मी का आह्वान श्री शंकराचार्य के कनक धारा स्तोत्र से ध्यान-पूर्वक किया जाना चाहिये।

मैं कुछ दिनों से विचार करता आ रहा हूँ कि हम लक्ष्मी-पूजन करते हैं, परन्तु यह लक्ष्मी- (मञ्जा) कौन सी है।

मैंने समय-समय पर "दीप-सम्मेलन", "कौन सा दीप बारूँ" आदि रचनाओं के माध्यम से जब जैसा अनुभव किया लिखा है। दशहरा-दीपावली के आगमन के पूर्व से ही मेरे मानस में लक्ष्मी का स्वरूप उभरने लगता है।

ऋग्वेद के ऋषिवर्ग, ऋतु-परिवर्तन पर बलि चढ़ाया करते थे। व बलि रूप दान अर्पित कर, इन्द्र से अधिकाधिक वर्षा की प्रार्थना करते थे। वर्षा के अभाव से सूखा पड जाता था। फसल नहीं होती थी। धान्य- (धान-अन्न या चावल) के अभाव मे लोग भूखों मर जाते थे। इन्द्र वास्तव मे धान्य के रूप में धन प्रदान करने वाले देवता हैं। इन्द्र की शक्ति अग्नि है। जो बलिदान, क्षीर सागर के निकट कर्क-सक्रान्ति पर किया गया, उसे 'इदा' अथवा 'इला' नाम से सम्बोधित किया गया था। यही वह हमारी लक्ष्मी है। कालान्तर मे 'धान्य' का स्थान 'धन' ने ले लिया।

लक्ष्मी के चित्र और मूर्तियाँ अनेक परिवारों में देखने का मुझे अवसर मिला है। प्राचीन मूर्तियों के संग्रहालयों में मैंने लक्ष्मी के अनेक आकारों-रूपों को देखा है। इन प्रतिमाओं का या चित्रों को परिवारों मे प्रतिष्ठित किया जाता है। लक्ष्मी वर्षाऋतु की देवी है! चारों हाथी चतुर्दिक मेघों के प्रतीक है तथा इन्द्र की उपस्थिति वर्षाऋतु के आरम्भ की ओर सकेत करती है। इन्द्र वर्षा कराने वाले देवाधिदेव हैं। इन्द्र की उपस्थिति, गजों के द्वारा लक्ष्मी के अभिषेक होते चित्र में अंकित है, जिससे यही तथ्य प्रकट होता है। इन्द्र वर्षा का दायित्व वरुण देव को सौंपते है। कर्क संक्रान्ति की सम्भावना के अनेक वर्षों पूर्व वर्षा होती रही होगी और वर्षा की देवी के स्वरूप मे लक्ष्मी का पूजन किया जाता रहा होगा।

मूर्ति या चित्र मे यह प्रदर्शित किया गया है कि लक्ष्मी श्वेत कमल पर विराजमान है। उसके दाहिने हाथ मे धान की बालियाँ है। उनका वाहन उल्लू बगल में स्थित है। उनका रंग अग्नि की लौ की भाँति दीप-शिखा की भाँति, वरुणान् अर्थात् पीला है। उनकी पूजा नित्य होती है। कुछ क्षेत्रों-अचलो मे इनकी पूजा महिलाएँ सन्ध्याकाल मे गुरुवार को भी करती है, अमावस्या को तो दीपावली मनाई जाती है। महिलाएँ एक पात्र मे धान भरकर और चारो ओर कौड़ियाँ सजाकर लक्ष्मी की पूजा करती है। गृहणियो द्वारा लक्ष्मी-पूजन से यह सिद्ध होता है कि इससे वैभव की प्राप्ति होती है। पूजन के समय ढोल-धमाके, वाद्य-नाद या घण्टा-घण्टी नही बजाये जाने की परम्परा रही है। इसके पीछे यही तर्क है कि लक्ष्मी-पूजन के समय पूर्णत शान्त वातावरण होना चाहिए।

गुजरात-बम्बई आदि मे विशेषकर कार्तिक शुक्ल पक्ष का प्रथम दिवस– 'नववर्ष' का पहला दिन माना जाता है। इसी दिन वहाँ भगवान् वामन के साथ-साथ दैत्यराज बलि की भी पूजा की जाती है।

कार्तिक अमावस्या को दीपावली मनाई जाती है। अपने पितरो के लिये 'यमलोक' तक का पथ प्रकाशित करना दीपावली का लक्ष्य या उद्देश्य है। यम का एक अर्थ– चित्त को धर्म मे स्थिर रखने वाले कर्मों के साथ विष्णु तथा वायु भी है।

लक्ष्मी और वृत्ति का पूजन-दीपदान के साथ-साथ होता है। 'वृत्ति', अलक्ष्मी का नाम है। लक्ष्मी-अलक्ष्मी का पूजन एक साथ ही होता है। लक्ष्मी-धन-सम्पत्ति एव उत्थान करने वाली है। अलक्ष्मी निर्धनता, दरिद्रता एव पतन का प्रतिनिधित्व करती है। राक्षसो का निवास समुद्रों के आस-पास बतलाया गया है। अलक्ष्मी के रूप में एक असुर जिसे 'नमुची कहा गया है, क्षीर सागर के पास रहता था और वर्षा-पथ का अवरोध करता था। इसी लिए उसका स्मरण किया जाता है। निकुंभ स्वर्ग मे स्थित क्षीर सागर का राक्षस है। दिन और रात के सन्धिकाल मे जल-झाग से आघात पहुँचाकर उसका सिर इन्द्र ने

मगोड़ा था। यह 'नमूची' ही बलि है। उसे भगवान् विष्णु ने अपने वामनावतार मे आकाश के दक्षिण भाग मे अर्थात् पाताल मे भेज दिया था। लका का राजा दशानन राक्षसराज रावण भी वही है, जिसे भगवान विष्णु ने 'रामावतार' मे मारा था। 'देव और रक्षक सस्कृति' का सघर्ष सात्विक और तामस प्रवृत्ति का मन मे द्वन्द्व' है। द्वन्द्व को जय करने का आनन्द-पर्व है दीपावली। आत्मजय का पर्व है 'आनन्द', जो निश्चित रूप मे दीपावली का प्रकाश है, यही शाश्वत आत्मप्रकाश है।

अयोध्या आगमन पर, लोक-कल्याण की तप साधना की भावना के शीर्ष पर जो ज्ञान आलोक दीपमाला मे बिखेरा गया था, उससे जीवन के अन्धकार का—तम (अन्धेरे) का—अन्त हुआ था तथा मनोविकार 'भय' पर 'उत्साह' का व्यापक अधिकार हुआ था।

दीपमालिका हर्ष, उल्लास, पूजन-अर्चन का श्रेष्ठतम पर्व है। यह त्यौहार भारत मे तो मनाया ही जाता है, विदेशो मे भी मनाया जाता है। प्रमुख रूप से हिन्दी भाषी भक्त देश मारीशस मे भी, चौदह वर्षीय वनवास व्यतीत कर, अयोध्या लौटे 'राम' के स्वागत में यह पर्व धूमधाम से मनाया जाता है। मारीशस मे कुमारी तथा नवविवाहिता, माटी के दीपो मे घी-बाती प्रज्वलित कर सर्वत्र प्रकाशार्थ दीपपक्तियाँ सजाया करती है।

भारत के दक्षिण में स्थित द्वीप श्रीलका मे भी दीपावली मनाने की परिपाटी है। वहाँ धन-वैभव की देवी लक्ष्मी का पूजन किया जाता है। भारत की भाँति नेपाल मे भी 'तिहार - पर्व' दीप-मालिका से घरो-भवनों को सुशोभित कर आलोकित किया जाता है। इस प्रकाशपुञ्ज से मन मे स्नेह की ज्योति जगाते हुये– शक्ति सरस्वती एव लक्ष्मी के चरणो मे विनम्र प्रणाम निवेदन कर हम कामना करते है कि हमारा समाज एव देश सकट-रूपी तम पर विजयी हो और दीपालोक की भाँति उसकी कीर्ति सर्वत्र फैले। दीपावली का यह लक्ष्मी-पूजन पर्व 'महालक्ष्म्यष्टक' एव 'कनकधारा' स्तोत्र के पाठ के साथ किया जाना चाहिए, जो इसीके साथ आगे दिये जा रहे हैं।

इन्द्ररचितं महालक्ष्म्यष्टकस्तोत्रम्—

नमस्तेस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते ।
शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि, नमोऽस्तु ते ॥१॥

नमस्ते गरुडारूढे कोलासुर भयङ्करि ।
सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि, नमोऽस्तु ते ॥२॥

सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि ।
सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि, नमोऽस्तु ते ॥३॥

सिद्धि बुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्ति प्रदायिनि ।
मन्त्रपूते सदा देवि महालक्ष्मि, नमोऽस्तु ते ॥४॥

आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ॥५॥

स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्तिमहोदरे ।
महापापहरे देवि महालक्ष्मि, नमोऽस्तु ते ॥६॥

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि ।
परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोस्तु ते ॥७॥

श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते ।
जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥८॥

जो व्यक्ति उपर्युक्त इस महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्र का सदा पाठ करता है वह सारी सिद्धियाँ और राज्यवैभव प्राप्त कर सकता है। प्रतिदिन एक बार नियमित रूप से पाठ करने वाले व्यक्ति के बड़े-बड़े पापों का नाश हो जाता है। दो समय पाठ करते रहने पर आस्थावान् पुरुष धनधान्य से सम्पन्न होजाता है। जो भक्त प्रतिदिन तीन काल पाठ करता है, उसके महान् शत्रुओं का नाश होजाता है और उसके ऊपर कल्याणकारिणी वरदायिनी महालक्ष्मी सदा प्रसन्न रहती है।

श्रीमच्छङ्कराचार्येण-रचितं सद्यः लक्ष्मीप्रदायकं

श्रीकनकधारास्तोत्रम्

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दिरानन्दकन्दलम् ।
अमन्दानन्दसन्दोहबन्धुरं सिन्धुराननम् ॥१॥

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणम् तमालम् ।
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः ॥२॥

मुग्धा मुहुर्विदधाति वदने मुरारेः
प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि ।
मालादृशोर्मधुकरीव महोत्पले या
सा मे श्रियं दिशतु सागर-सम्भवायाः ॥३॥

विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्ष-
मानन्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि ।
ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्धम्
इन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥४॥

आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा
मुकुन्दमानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम् ।
आकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं
भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥५॥

बाह्वन्तरे मुरजितः श्रितकौस्तुभे या
हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला
कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥६॥

कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारे
धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव ।
मातुः समस्त जगतां महनीय मूर्ति
भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनाया ॥७॥

प्राप्तं पदं प्रथमतः खलु यत् प्रभावात्
माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन ।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्द्धम्
मन्दालसं च मकरालय कन्यकाया ॥८॥

दद्याद्दयानुपवनो द्रविणाम्बुधाराम्
अस्मिन्नकिञ्चन विहङ्गशिशौ विषण्णे ।
दुष्कर्म घर्ममपनीय चिराय दूरम्
नारायणप्रणयिनि नयनाम्बुवाह ॥९॥

इष्टाविशिष्ट मतयोऽपि यया दयार्द्र–
दृष्ट्या त्रिविष्टप पदं सुलभं भजन्ते ।
दृष्टिः प्रहृष्ट कमलोदरदीप्तिरिष्टा
पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टराया ॥१०॥

गीर्देवतेति गरुडध्वज सुन्दरीति
शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति ।
सृष्टिस्थिति प्रलयकेलिषु संस्थितायै
तस्यै नमस्त्रिभुवनैक गुरोस्तरुण्यै ॥११॥

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभ कर्मफलप्रसूत्यै
रत्यै नमोऽस्तु रमणीय गुणार्णवायै ।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्र निकेतनायै
पुष्ट्यै नमोऽस्तु परवो ... भार्ये १२

नमोऽस्तु नालीक निभाननायै
नमोऽस्तु दुग्धोदधि जन्मभूम्यै ।
नमोऽस्तु सोमामृत सोदरायै
नमोऽस्तु नारायण वल्लभायै ॥१३॥

नमोऽस्तु हेमाम्बुज पीठिकायै
नमोऽस्तु भूमण्डलनायिकायै ।
नमोऽस्तु देवादिभिरर्चितायै
नमोऽस्तु शार्ङ्गायुध वल्लभायै ॥१४॥

नमोऽस्तु कान्त्यै कमलेक्षणायै
नमोऽस्तु भूत्यै भुवनप्रसूत्यै ।
नमोऽस्तु देव्यै भृगुनन्दनायै
नमोऽस्तु दामोदरवल्लभायै ॥१५॥

नमोऽस्तु लक्ष्म्यै कमलालयायै
नमोऽस्तु विष्णोरुरसिस्थितायै ।
नमोऽस्तु देवादिदयापरायै
नमोऽस्तु नन्दात्मजवल्लभायै ॥१६॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदाननिरतानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद् वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ॥१७॥

यत्कटाक्षसमुपासनाविधि
सेवकस्य सकलार्थसम्पदः ।
सन्तनोति वचनाङ्ग मानसैस्त्वां
मुरारि हृदयेश्वरी भजे ॥१८॥

सरसिजनिलये सरोजहस्ते
धवलतमांशुक गन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥१९॥

दिक्हस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्ट
स्वर्वाहिनि विमल चारुजलप्लुताङ्गीम् ।
प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष–
लोकाधिनाथ गृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ॥२०॥

कमले कमलाक्ष वल्लभे त्वं
करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः ।
अवलोकय मामकिञ्चनानां
प्रथमं पात्र अकृत्रिम दयायाः ॥२१॥

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं
त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम् ।
गुणाधिका गुरुतरभाग्यभागिनो
भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ॥२२॥

सुवर्णधारा स्तोत्रं यच्छंकराचार्यनिर्मितम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स कुबेरसमो भवेत् ॥२३॥

सामाजिक पर्व-प्रसंग का पन्ना—

भीषण ताप के पश्चात् वर्षा के आगमन का स्वागत प्रकृति करती है। मानव समुदाय भी, भेदों से परे, अपने सांस्कृतिक पर्वों को उत्साह-पूर्वक मनाता है और अपनी आर्थिक, सामाजिक व मानसिक स्थिति के अनुसार जागृति का शखनाद कर इन सामाजिक पर्व-प्रसंगों में सलग्न हो जाता है।

गणेश-जन्मोत्सव

भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने शखनाद कर भारतवासियों को स्वतन्त्रता का यह मन्त्र दिया था कि 'स्वतन्त्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे।' उसी अधिकार की प्राप्ति के लिये उन्होंने गणेशोत्सव मनाना प्रारम्भ किया। फलत गणेश चतुर्थी (४) भाद्रपद को, सन १८९३, में गणेश-जन्मोत्सव का मनाना प्रारम्भ कर, भारत की आजादी की प्राप्ति का यह निनाद किया गया था। महाराष्ट्र में प्रारम्भ होकर यह पर्व देशव्यापी रूप में मनाया जाने लगा। यह दश दिवसीय पर्व अब सर्वत्र श्रद्धा व उत्साह से मनाया जाता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी देश में मानसिक तिमिर व्याप्त है, राष्ट्रप्रेम की उन्मुक्त धारा अभी तक नहीं बह पाई। अत अब इसका उद्देश्य राष्ट्र की अस्मिता, इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, कृषि एव औद्योगिक आर्थिक विकास की स्थापना हो जाना चाहिए। श्रीगणेश ने 'शिव' के ज्ञान-विज्ञान, कला, सगीत शास्त्र और साहित्य की सब धाराओं को सहेजा है क्योंकि वे गणनायक गणक है। 'आए-गये' की गणना करना उनका कार्य है, जिसके फलस्वरूप सामाजिकता एव आत्मीयता के संस्कार पैदा होते हैं। इस कारण उनकी प्रतिमा को 'मगलमूर्ति' कहा गया है। तिलक जी ने व्यक्ति-क्रांति के परिपेक्ष्य में सामूहिक क्रांति एव बदलाव

की प्रेरणा गणेश-जन्मोत्सव के माध्यम से ही दी थी ।

रक्षाबन्धन

श्रावण (सावन) मास के सभी त्यौहारों में मुख्य श्रावण पूर्णिमा भाई-बहिन के प्रेम का प्रतीक, रक्षा के संकल्प का अपूर्व सांस्कृतिक पर्व रक्षा-बन्धन (राखी) है । यह पर्व हर हिन्दू की आन्तरिक प्रेरणा से सम्बद्ध है । "राखी बँधवा लो भैया" ... इन शब्दों की आत्मीयता में गहन प्रेम का सन्देश है । इसके साथ कजलिया (भुजलिया) भी दूसरे दिन मनाया जाने वाला सौहार्द का प्रतीक पर्व है । परस्पर गले मिल, गेहूं के अंकुरित पीत पत्र भुजरिया देने-लेने से, मिलने में, असीम अपनापन आता है । छोटे, बड़ों के चरण स्पर्श कर, आशीष पाकर आनन्दित होते हैं ।

कृष्ण-जन्माष्टमी

राम और कृष्ण भारत के जन-जन और कण-कण में व्याप्त हैं । भाद्र कृष्णपक्ष की अष्टमी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, वैष्णव जन्माष्टमी, गोकुलाष्टमी के रूप में सम्पूर्ण भारतवर्ष में बड़ी श्रद्धा-भक्ति व धूमधाम से मनायी जाती है । भगवान श्रीकृष्ण ने कंस का वध कर, हिंसा-आतंक को समाप्त किया था । उन्होंने प्रेम की वंशी बजाकर सगुणो-पासना का मार्ग प्रशस्त किया था । महाभारत में गीता का सन्देश देकर, संसार के समस्त प्राणियों के लिये ज्ञान-भक्ति-कर्म-योग का पथ प्रशस्त किया था । वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अर्जुन-सा मोह सम्पूर्ण राष्ट्र में, समाज में, व्याप्त है । जनशक्ति अर्जुन की भाँति अस्त्र-शस्त्र डाल कर कायर व भयभीत हो चापलूसी में लग गई है । आत्मनाश को आमंत्रित करने वाले राजनीतिज्ञों को जन-शक्ति ही अपने धैर्य और शौर्य से अच्छा पाठ पढ़ा सकती है । भगवान कृष्ण ने जिस तरह कौरवों के अहंकार, अत्याचार तथा छल-कपट को नष्ट करने का योग रचा था, उसी भाँति कृष्ण-जन्माष्टमी से भी हमें आत्मबोध की प्रेरणा मिलती है

जब मथुरा में कंस मारा गया तब देवकी कृष्ण को गोद में लेकर गाने लगी, पिता वसुदेव ने कृष्ण को आलिङ्गित कर, अपना जन्म सफल माना, क्योंकि कंस से सभी बहुत पीड़ित थे। तभी से कृष्ण जन्म-दिन 'जन्माष्टमी' के रूप में मनाया जाता है। इस उत्सव पर जन्माष्टमी का व्रत रखा जाता है। उस समय सिंह राशि पर सूर्य और वृषराशि पर चन्द्रमा था, भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि थी। इसी समय अर्द्धरात्रि में रोहिणी नक्षत्र में भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था। मथुरा से इस व्रत का प्रसार समस्त देश में हुआ। इस व्रत से सामाजिकों को शान्ति सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। 'ॐ वासुदेवाय नमः' तथा 'ॐ कृष्णाय नमः' मन्त्रों से पूजन-जाप करना चाहिये। जिस परिवार, समाज व देश में यह उत्सव मनाया जाता है वहाँ जन्म-मरण, आवागमन की व्याधि अवृष्टि तथा इति भीति आदि का भय नहीं रहता और व्रत करने वाले को विष्णु-लोक की प्राप्ति होती है।

हरितालिका व्रत

तीजा, वराह जयन्ती, गौरी तृतीया महिलाओं के कठिन व्रत-साधन का पर्व है। इस व्रत में जल तक नहीं पिया जाता। इसी लिये इसे निर्जला व्रत कहते हैं। माँ गौरी ने प्रभु शंकर को पाने के लिये यह कठिन व्रत लिया था तथा उसे पूरा किया था। अपने सौभाग्य की सदा कामना के लिये किया जाने वाला यह व्रत— 'तीजा–हरितालिका' के नाम से धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व रखता है। युधिष्ठिर को भगवान् कृष्ण ने बतलाया था कि दक्ष प्रजापति की नीलकमल वर्ण की एक कन्या का नाम 'काली' था। भगवान शंकर के साथ उनका विवाह हुआ था। एक समय सुरम्य मण्डप में, हँसकर शिवजी ने भगवती काली को— 'प्रिये गौरि! यहाँ आओ'— कहकर बुलाया। भगवती शिवजी के वक्र वाक्य सुनकर बहुत क्रोध से भर उठी। वे रोने लगी और कहने लगी कि "मेरा कृष्ण वर्ण देखकर भगवान् ने मेरा परिहास किया है मुझे 'गौरि' कहा है अब मैं ण क ल रेह

को अग्नि मे जला दूँगी ।" भगवान् शिव ने बहुत रोका । पर देवी काली ने अपनी देह हरित वर्ण की कान्ति अर्थात् हरी दूर्वा के साथ त्याग दिया । पुन हिमालय के यहाँ उन्होंने 'गौरी' नाम से जन्म लिया तथा भगवान शकर के वामाङ्ग मे निवास किया । इस लिये इस दिन से उनका नाम 'हरकाली' हुआ । जो महिला भक्ति-पूर्वक 'हरकाली' या हरतालिका व्रत करती है, वह पतिप्रिया होती है ।

शारदीय नवरात्र

नवरात्र का पर्व वर्ष मे दो बार आता है । चैत्र नवरात्र के प्रारम्भ मे चैत्र प्रतिपदा का— और वसन्त के अन्त तथा ग्रीष्म के प्रारम्भ मे श्रद्धा-भक्ति-भाव से यह पर्व मनाया जाता है ।

शारदीय नवरात्र-व्रत वर्षा की समाप्ति और शीतऋतु के के प्रारम्भ मे मनाया जाता है । शरद ऋतु मे श्वेत वर्णी पुष्प-सा पावन, सात्विक, श्रद्धा-भक्ति-उपासना से युक्त यह पर्व है । माँ दुर्गा की आराधना व्रत उपासना श्रद्धा व भक्ति के सात्विक भाव से, की जाती है । मानस की तामसी वृत्ति पर नियन्त्रण के लिए इस व्रत - काल मे दुर्गा सप्तशती का पाठ, अध्यात्म-चिन्तन, मनन, एकाग्र चित्त से किया जाना चाहिए । दुर्गा-चरित्र स्मरण से सद्प्रवृत्तियो को शक्ति मिलती है और मन की दुर्बलता नष्ट होती है । मन की शक्ति माँ के स्तवन से तथा जगदम्बा की निरन्तर कृपा से प्राप्त होती रहती है ।

वैदिक साहित्य मे सदिन रूप मे वर्णित कोजागिरी या कोजागरी व्रत सत्य व्रत आदि भारतवर्ष मे स्थित शाक्त्य, शैव, वैष्णव सम्प्रदाय के अपने-अपने इष्ट की ओर सकेत करते है । परन्तु हम सभी की उपासना करते है । यह सस्कृति की महान उदारता का उत्कृष्ट दृष्टि-कोण है । राष्ट्रीय एकता का ऐसा ज्वलन्त उदाहरण और कहाँ मिलेगा । आश्विन शुक्ल पचमी को सरस्वती देवी का 'आह्वान-पर्व' होता है और आश्विन शुक्ल ६ को सरस्वती-पूजन किया जाता है । सरस्वती हमारे ज्ञान की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी है —माँ है । उनका कीर्तन

अर्चन, संगीत तथा कला काव्य-साहित्य के प्रति कोमल भाव हमें सात्विक मानवता की ओर लेजाता है। पशुत्व से ऊपर उठ कर हम मनुजत्व—मानवता—का वरण करते हैं।

शरद पूर्णिमा

मानव की रुचि काव्य, साहित्य, कला, संगीत नृत्य के प्रति आकर्षण से व्यक्त होती है अतः वह इनसे जुड़ी है। शारदीय पर्व तथा कौमुदी उत्सव के आयोजन प्राचीन काल से होते आ रहे हैं। चन्द्रमा का बिम्ब दूध पर पड़ कर उसे अमृत बना देता है। दुग्ध की धवलता, चन्द्र-ज्योत्स्ना की धवल किरणें एवं धवल पुष्पों से सारा अग-जग 'राम' के पुण्य-प्रताप से पावन हो उठता है। शारदा—सरस्वती—का उल्लेख वाणी की देवी, विद्या की देवी, ब्रह्मा की पुत्री और पत्नी के रूप में किया गया है। 'महाभारत' में वह दक्ष-कन्या कही गई है। पहले सरस्वती विष्णु-पत्नी थी। लक्ष्मी से सौतिया वैमनस्य के कारण उन्होंने इन्हें ब्रह्मा को दे दिया। तभी से ये ब्रह्मा की पत्नी के रूप में प्रसिद्ध है। सरस्वती विद्या और मधुरता की देवी है। वैदिक मंत्रों में 'इडा और भारती' के साथ 'सरस्वती' का नामोल्लेख मिलता है। 'यज्ञदेवी' के रूप में इन्हें 'वाचादेवि' कहा गया है। इन्होंने इन्द्र को शक्ति दी थी। यह वाणी की देवी है, स्वर है, शब्द है, देववाणी है।

विजयादशमी (दशहरा)

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन पुण्यतोया भगवती गंगा का जन्म हुआ था और दशमुखान्तक श्रीराम ने सेतु बंध रामेश्वर की स्थापना भी की थी। विजयादशमी वह तिथि है, जब राम ने रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या में प्रवेश किया था। दशानन को हराने के कारण 'दशहरा' विजय पर्व मनाया जाता है।

देवि दुर्गा ने 'दुर्गम' का वध किया और 'दुर्गा' कहलाई। दुर्गा सति का एक रूप है, जोकि आदि शक्ति का प्रतीक है। मानव ने जब जीना सीखा तो उसे अपने जीवन के लिये प्रेरक प्रतीकों की आवश्यकता

हुई। अपनी सभ्यता और संस्कृति के आदि-काल में उसने अपने आस-पास प्रकृति की प्राण-प्रतिष्ठा की और विशाल वृक्ष, जलाशय, सर्प तथा सूर्य की उपासना की। अविनाशी शिव और गणेश लोकमंगल के देवता माने गये। आचरण की धरा पर शिव आस्था और विश्वास के प्रतीक हैं। शिव की पत्नी के अनेक नाम हैं, कुछ नाम इस प्रकार हैं– शिवा, भवानी देवी, चण्डी कालिका, भैरवी, कापालिका, कराला, भद्र-काली आदि। शान्त, कोमल, मधुर रूप में वे पार्वती उमा, गौरी कही जाती हैं। प्रचण्ड और विकराल रूप में वे चण्डी हैं, दुर्गम राक्षस का संहार करने वाली दुर्गा हैं, उनके दश हाथ विविध आयुधों से युक्त हैं, गले में मुण्डमाल है, सिंहवाहनी हैं। इन्होंने ही शुंभ, निशुंभ, महिषासुर, रक्त बीज आदि का वध किया था। स्मार्त और तान्त्रिक विशेषज्ञ उनकी पूजा करते हैं। योगमाया का स्वरूप भी दुर्गा है। देवकी ने दुर्गा को सन्तुष्ट किया था। इनकी उपासना मूर्ति-घट-स्थापना के रूप में इस अवधि में होती है।

नवरात्र

चैत्र नवरात्र का प्रारम्भ चैत्र प्रतिपदा से होता है। यह पर्व एक परम्परा है। इस समय दो ऋतुओं का संगम होता है। बसन्त के अन्त एवं ग्रीष्म के आरंभ पर यह पर्व मनाया जाता है। यह अनुभूत सत्य-तथ्य है कि जब कभी किसी दो विभिन्न तत्वों का संगम होता है तब एक विचित्र सी स्थिति उत्पन्न होती है। दो भिन्न ऋतुओं के मिलने से एक नवीन वातावरण की सृष्टि होती है, जिसे लोग प्रत्यक्ष रूप में अनुभव करते हैं। सूक्ष्म तरंगें भी बदलती हैं, जिनका प्रभाव व्यापक रूप से शरीर और मन पर पड़ता है। उपवास (व्रत) या फलाहार के विधान का परिपालन सूक्ष्मदर्शी ऋषियों ने निर्देशित किया है।

"ऋतु-परिवर्तन से जगत में परिवर्तन होता है। जब जीवों में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है, तब मनुष्य के तन और मन पर उसका गहरा प्रभाव क्यों न पड़ेगा ? अतः इनसे निपटने में व्रत ही

सहायक होते है। व्रत से स्वास्थ्य उत्तम रहता है। नवरात्र-पर्व का वातावरणीय महत्व है। वसन्तकाल एवं शरद्काल—ये दोनों ऋतुएँ 'यम-दष्ट्रा'— ही हैं।"

नवरात्र व्रत से रोग शान्त रहते है, अन्यथा विविध रोगो से लोग पीड़ित होते है। नवरात्र व्रत के पालन करने मे जल दूध, दही, फल आदि हलके सुपाच्य पदार्थ भोजन मे लेने चाहिए। गरिष्ट पदार्थ तथा अन्नादि पर नियन्त्रण से पाचन-शक्ति ठीक रहती है। इसमे शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक लाभ प्राप्त करना सम्भव होता है, मन और बुद्धि को शक्ति मिलती है। "व्रत" को इस रूप मे परिभाषित किया गया है— 'जीवन मे जो वरणीय है, बार-बार अनुष्ठान के द्वारा मन वचन कर्म से जो प्राप्त करने योग्य है, वही व्रत है।' प्रत्येक व्रत के साथ-साथ कोई न कोई कथा जुड़ा रहती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि व्रत मानव-जीवन की धर्म-पिपासा की परितृप्ति के लिये केवल बीच-बीच मे ही अनुष्ठान करने योग्य नहीं है, बल्कि इसे हमारे व्यावहारिक जीवन का एक प्रधान अंग बन जाना चाहिए।

"उपवास" शब्द का अर्थ है— 'आहार निवृत्ति रूप वास, अर्थात् निराहार रहना और अपने 'इष्ट' के सन्निकट रहना ही उपवास है। आहार का अर्थ— जो कुछ आहरण किया जाता है, सञ्चय किया जाता है, वही आहार है। आहार के स्थूल और सूक्ष्म (दो प्रकार के) भेद है— (१) मन, आदि द्वारा आहार संस्कार ही सूक्ष्म आहार है। पाँचों इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले,स्पर्श,रूप,रस,गन्ध स्थूल आहार हैं। इसके अतिरिक्त जिसे 'आहार' कहा जाता है दाल-चावल व्यजन आदि स्थूलतर आहार है। 'उपवास' शब्द का अर्थ— किसीके समीप रहना है। उपवास का अर्थ— है आहार-निवृत्ति अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल एव स्थूलतर आहारो का न लिया जाना तथा अपने इष्ट देवता या देवी का सामीप्य प्राप्त करने की प्रार्थना करना। व्रत काल मे सप्तशती-पाठ एव आध्यात्मिक चिन्तन से मानसिक विकार शान्त होते हैं। दुर्गा चरित्र स्मरण से मन सदैव काम-क्रोध-ईर्ष्या आदि दुष्प्रवृत्तियों से मुक्त हो

सद्प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख होना है। प्रकृति का सूक्ष्मतर गहरा प्रभाव तन-मन पर पड़ता है। अतः नवरात्र व्रत-पालन से मन पर प्रकृति के साथ आध्यात्मिक संयोग का प्रभाव भी पड़ता है। इसी लिए हम देवी की आराधना में यह प्रार्थना करते हैं।

'देवि, प्रपन्नार्ति हरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि, पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥'

'नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते,
शंख-चक्र-गदा हस्ते महालक्ष्मि, नमोऽस्तु ते।'

"श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा।"

होलिकोत्सव

'फागुन फिर-फिर आई हो!'

फागुन मास (वसन्त) के अन्त में होली, मस्ती का रंग, गुलाल लेकर आती है। होली जैसे रंगीन त्यौहार पर हृदय का उल्लास गीतों के रूप में मुखरित हो जाता है। होरी, फाग और रसिया लोकगीत के साथ मधुर सरस गाली (गारी) गीतों में छिपा हास-परिहास तथा श्रृंगार लोकरञ्जन से सराबोर, श्याम-राधा, कृष्ण-गोपी की रंग भरी पिचकारी का स्नेहमय हो उठना, होलिका पर्व पर ही सम्भव हो सकता है। भारत के जनसमुदाय के सभी वर्ग और जातियाँ होली के आनन्द से सराबोर होजाते हैं तथा परिचित-अपरिचितों, मित्र-सहचरों के संबंध गहरे और मधुरतम बनते हैं। मृदंग की थापें गूँज उठती हैं पद ताल-नृत्य-लय में आत्मविभोर हो जाते हैं, मस्ती भरे गान-गूंजन लगते हैं। रंग में रँग जाता है सारा वातावरण।

फागुन की पूर्णिमा को ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगर में यह उत्सव मनाया जाता है; होली जलाई जाती है। सर्वसम्पन्न, दानी राजा 'रघु' सत्ययुग में हुए। सभी तरह का सुख था। इसी समय ढोंढा राक्षसी जो माली दैत्य की पुत्री थी उग्र तप से भगवान शिव से

वरदान पाकर, शक्तिमती होगई थी और वह कामरूपिणी राक्षसी नित्य, बालको व प्रजा को पीडा पहुँचाने लगी थी। केवल 'अडाडा' मन्त्र के उच्चारण पर शान्त होजाती थी। राजा रघु ने लोगो के भय का कारण जाना। फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तिथि को, सभी लोगो को निडर होकर नाचना, गाना, हँसना तथा क्रीडा करने के लिये उन्होने प्रेरित किया। सूखी लकडी, उपले, पत्तियाँ एकत्र कर रक्षोघ्न मन्त्रो मे अग्नि लगाकर ताली बजा-बजाकर हँसने का उन्होने आदेश दिया, ताकि वह राक्षसी नष्ट हो। इसीको 'होलिका' भी कहा जाता है। सभी दोषो की शान्ति के लिये होलिका की विभूति (राख) की वन्दना कर, अपने शरीर मे लगाना चाहिये। कुव्यवस्था को सुव्यवस्थित करने वाले अपवित्रता को पवित्र करने वाले सस्कार का यह पर्व है। 'राम' प्रह्लाद और भक्त-समुदाय का धर्म था, जो विपत्ति के समय धर्म प्रदान करता है और सुख के क्षणो मे उद्दण्ड नही होने देता। दानवराज हिरण्यकश्यप प्रह्लाद पर प्रहार करता है। दुष्ट अराजक शासन का पेट लोकभगवान के रूप मे नृसिंह प्रकट होकर चीर देते है। होलिका अत्याचार की चापलूसी मे झुक, सहयोग कर रही थी, क्रान्तिकर्ता प्रह्लाद व जनता के सम्मुख वह जलकर भस्म हो जाती है। तब लोक मे आनन्द छा जाता है। प्रह्लाद की निष्ठा अटल थी। उसके श्रेष्ठ विचार का, प्रशासक हिरण्यकश्यप द्वारा हिंसक एव कठोर विरोध किया जा रहा था। अधिक विरोध, दबाव, पाबन्दी, गिरफ्तार किया जाना, प्रह्लाद रूपी-भक्त शक्ति के उद्धार के लिये अच्छा हुआ। फलत भगवान् राम मे उसकी निष्ठा अधिक प्रबल व सशक्त हुई और होलिका की आँच मे कुशासन ही जलकर निष्प्राण तथा नष्ट हो गया। उसी समय से मनाई जा रही है यह परम्परागत होली। होडा के उत्सव को ही होलिका कहा जाता है। फागुन की पूर्णिमा की तिथि परमानन्ददायक है।

रामनवमी

राम का अवतरण तो अपने भक्तो के कष्ट-निवारण, दुष्टो के

वध और पुनः धर्म स्थापना के हेतु हुआ था। भक्तों को परमानन्द देने वाले भगवान् राम की कल्पना अद्भुत है। मानव शरीर की गति को स्वीकार कर, प्रत्याख्यान की चिन्ता किये बिना, जो प्रभु सबके उद्भव का कारण है, वह अवतरित होता है। सघनता को गहन करना ही भगवान् का धर्म है। अनेक आख्यानों में यह विदित होता है कि राम-जन्म के अनेक कारण हैं। वैसे राम ब्रह्म है, सर्व व्यापक है, परम पूर्ण है, सच्चिदानन्द है और घट-घट-वासी भी है।

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' ब्र० सू० /६/६/६। जब-जब किसीने गहन ब्रह्म-चिन्तन किया, ब्रह्म में जिज्ञासा की, तब-तब श्रीराम का अवतार हुआ। वैसे श्रीराम-जन्म त्रेता-युग में (लगभग ६ लाख वर्ष पूर्व) हुआ था। इसके पूर्व राम-जन्म नहीं हुआ। सतयुग में हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद को नारदमुनि ने 'राम-राम' मन्त्र की दीक्षा दी थी। 'राम ही परमब्रह्म है,— इस परम तत्व का बोध नारद जी ने प्रह्लाद को कराया था।

परमात्मा राम का हमारे मध्य प्रकट होना अनुग्रहमूलक है। वे हमारे मध्य उपस्थित होकर हमें अभय प्रदान कर निर्भय बनाते हैं।

> 'नौमी तिथि मधुमास पुनीता।
> शुक्ल पक्ष अभिजित हरिप्रीता॥'

यहाँ 'नौमी' का विशेष महत्त्व है। यह पूर्णांक अर्थात् ब्रह्मांक है। नौ का अंक परम मंगल का वाचक है, जो मंगलमय है। अतः रामनवमी जैसे पुनीत पर्व पर अपने अन्दर राम-भाव को हमें जागृत करना चाहिए और व्रत-उपवास कर भगवान् राम के प्रति अपनी भक्ति प्रकट करनी चाहिए।

> 'जब-जब होइ धरम की हानी—
> बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी—
> तब-तब प्रभु धरि मनुज शरीरा—
> हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा

शिवरात्रि

'यो ब्रह्मा स. हरि प्रोक्तो, यो हरि स. महेश्वर.
महेश्वर. स्मृत सूर्य सूर्य: पावक उच्यते ॥'

सारा जगत शिवशक्तिमय है। अत अभेद भाव से हमें उनका व्रत करना चाहिये और सदाचार का पालन किया जाना चाहिये, क्योंकि आचरण ही धर्म का, जीवन का, मूल है।

स्कन्द पुराण मे यह उल्लेख किया गया है कि जो व्यक्ति शिवचतुर्दशी मे शिव की पूजा करके रात्रि-जागरण करता है, चाहे सागर सूख जाये, हिमालय टूट जाये, मन्दर-विन्ध्यादि विचलित होजायें, पर उसका शिवव्रत कभी निष्फल नही हो सकता।

'शेते तिष्ठति सर्व जगत् यस्मिन्—
स शिव-शम्भु विकार-रहित'

अर्थात् जिनमे सारा जगत् शयन करता है, जो विकार-रहित है वह 'शिव' है।'

जो अमगल का नाश करते हैं, वे ही सुखमय-मगलमय भगवान शिव है। जो सारे जगत् को अपने अन्दर लीन कर लेते है, वे ही करुणासागर भगवान शिव है। शिव तो नित्य, सत्य, जगदाधार, विकार-रहित, सर्वद्रष्टा सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है। वे ही सगुण ईश्वर' और 'निर्गुण' कहे जाते है। भगवान् शिव तो वर्णनातीत होते हुए भी अनुभवगम्य है। त्रिविध ताप शमन करने वाले, आशुतोष, त्रिविध व्याधि-हर, दया के सागर एव करुणावतार शिव हैं।

'रा' दानार्थक धातु से 'रात्रि' शब्द बना है, वह रात्रि जो सुखादि देती है और आनन्ददायिनी है। इस तरह आनन्द देने वाली रात्रि ही शिवरात्रि है। जिसमे शिव की पूजा, उपवास और जागरण होता है— वह फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि है। शिवपूजा करने का महाव्रत इसी दिन माना गया है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि विशेष महत्व रखती है फाल्गुन के पश्चात् नये वर्ष चक्र का प्रारम्भ उसी भांति होता है, जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् दिन और दिन के पश्चात् रात्रि होती है। वर्ष चक्र की पुनरावृत्ति के समय मोक्ष की इच्छा रखने वाला जीव परम तत्व शिव के पास पहुंचना चाहता है। जीवरूपी चन्द्र का शिवरूपी सूर्य के साथ मिलन होता है, अतएव जीव को इष्ट पदार्थ की प्राप्ति होती है।

शिवरात्रि व्रत में उपवास, जागरण तथा भगवान् शिव की पूजा प्रमुख है। वेद-बोधित अग्निहोत्र कर्म व शास्त्र-विहित नियमादि धर्म ही व्रत है, अर्थात् जिस कर्म द्वारा भगवान् का सान्निध्य होता है, वही व्रत है। शिवरात्रि-जागरण अवश्य करना चाहिये। पुष्प, चन्दन, बिल्वपत्र अर्पित कर शिव का नाम - जाप ध्यानपूर्वक करना चाहिये। जीवात्मा का 'आवरण विक्षेप हटा कर' परम तत्व 'शिव' के साथ एकीभूत होना ही 'शिवपूजा' है। समस्त प्राणियों के लिये महाशिवरात्रि व्रत कल्याण कारी है।

'शिवरात्रि दो प्रकार की कही गई है– 'प्रति मास' की शिवरात्रि (कृष्ण चतुर्दशी) को मास 'शिवरात्रि' तथा फाल्गुन मास में कृष्ण चतुर्दशी को 'महाशिवरात्रि' माना गया है। महाशिवरात्रि को भोले बाबा 'शिव' के विशेष दर्शन-पूजन का महत्व है, क्योंकि यह दिव्य शिवरात्रि व्रत एवं दर्शन सर्वदा साधक को मुक्ति देने वाला है। महाशिवरात्रि व्रत सभी व्रतों में उत्तम तथा प्राचीन है। भगवान् विश्वेश्वर शिव की अर्चना भक्तगण जलाभिषेक, दुग्धाभिषेक से करते हैं तथा बिल्व पत्रों पुष्पों को शिवलिंग पर अर्पित करते हैं। दर्शन और पूजन सभी छोटे बड़े मन्दिरों में चलता रहता है। शिव लोक-मंगल के देवता है। शिव भारत के जनजीवन में त्रिशूलधारी युगव्यापी त्रिकाल तत्व के रूप में प्रतिष्ठित है। ज्ञान-विज्ञान, कला, संगीत, शास्त्र और साहित्य की समस्त धाराएं उनसे ही प्रकट हुई है, अतएव शिव को लोक मंगल का देवता कहा जाता है।

जो साधक पवित्र 'श्री शिवपञ्चाक्षर स्तोत्रम्' का पाठ शिव के समीप करते हैं, वे शिवलोक प्राप्त करते हैं तथा शिवजी के साथ आनन्दित होते हैं।

श्री शिवपञ्चाक्षर स्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥१॥

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय
तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥२॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द–
सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय
तस्मै 'शि' काराय नमःशिवाय ॥३॥

वशिष्ठकुम्भोद्भवगौतमादि–
मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय
तस्मै 'व' काराय नमःशिवाय ॥४॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय
तस्मै 'य' काराय नमःशिवाय ॥५॥

पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसंनिधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६॥

विविधा

○ जल क्रान्ति

जल-क्रान्ति—

झर-झर झर-झर,
सरित मचल अविरल,
कलकल कलकल,

जीवन-गान सुनाये ।
आई मॉम तेज बन,
कारण-रूप बहु बरसाये ।

क्यों घिर-घिर आये,
सत्य सार श्यामल,
विविध रूप बादल ?

(काव्यार्चन से)

वर्षा के समय पानी ही पानी । नदी, नालों तथा तालाबों ने अपने किनारे छोड़े । कितना पानी वृष्टि से धरती ने पिया, कितनों ने उसमें स्नान किया और कितना कुओं-तालाबों में सचित होगया । हर वर्ष की तरह ग्रीष्म के आते ही हर क्षेत्रों में प्राय दूषित पानी, खारा पानी या आयरन फ्लोराइड तत्वों की अधिकता से रोगों की समस्या उत्पन्न कर देने वाला पानी उपलब्ध होता है । निस्तारण तकनीकी उपायों की शरण लेकर जल-प्रबन्ध हेतु भू-जल के स्रोतों की खोज और उन खोजे गये स्रोतों से जल-दोहन की दर आधुनिकतम तकनीकी कमाल के उपयोग पर निर्भर करती है । जल ही जीवन है । पीने का साफ पानी मानव की सबसे अहम जरूरत है । सीमित साधनों के मध्य, इस समस्या से सघर्ष कर, सामना कर, काबू पाना, अनुकरणीय उदाहरण हो सकता है । हर क्षेत्र में जल-सकट की समस्या मुँह बाये खड़ी हो जाती है । हजारों गाँवों में पीने के पानी के साथ सिंचाई के लिये जल,

नगरो में पीने के पानी का वितरण, विद्युत-उत्पादन हेतु जल का आवगन और सूखा जैसी स्थिति का सामना करना कठिन समस्या बन जाती है।

कितना दुष्कर है—आगामी वर्षा की प्रतीक्षा तक पेयजल स्रोता से पानी उपलब्ध कराना और स्थायी या अस्थायी रूप में पानी की आपूर्ति अन्य क्षेत्रो से करने की व्यवस्था करना। जब वर्षा का अभाव होता है, तब तालाब, कुएं और नदियो का जल-स्तर और नीचे गिरने लगता है। पानी मे कीटाणुओ की मात्रा बढने से रोगो का फैलाव का खतरा बना रहता है, अत जो उपलब्ध जल है उसे कीटाणु-रहित कर आपूर्ति योग्य बनाना आवश्यक है। आधुनिक तकनीकी अपनाई जाकर पहल से लाभ उठाया जाना उपयुक्त और हितकर होता है।

ज्यो-ज्यो ग्रीष्म बढता है, त्यो-त्यो भू-जल-स्तर नीचे गिरता जाता है। भू-गर्भवेत्ता ऐसे समय मे, उपयुक्त सलाह देकर खुदाई से हैंड पम्पो से पूरे वर्ष पानी मिले, इस हेतु उपाय प्रस्तावित कर सकते है। यदि पानी का मर्यादित उपयोग न किया जाय, सिंचाई के तौरतरीको मे परिवर्तन न किया जाये और परिशोधित जल सिंचाई के लिए उपयोग मे न लाया जाये तो जल, जीवन नही, काल भी बन जाता है। पानी की बचत न करने का परिणाम ही तो दुष्काल है। जल-राशि की बचत न करने का परिणाम ही तो मुसीबत है।

एक दशक पूर्व अधिकाश जिलो मे स्वच्छ पेयजल से वंचित कुओ, झरनो, सरोवरो व पोखरो का जल गंदा और मैला होता था। उसे ही निस्तार और प्रयोग मे लाया जाता था। मनुष्य और मवेशी का निस्तार अधिकतर साथ ही साथ उसमे हुआ करता था। इसका परिणाम कभी-कभी भयंकर रोग-प्रकोप के स्वरूपो मे उभर जाता था।

मेरे आस-पास अपना ही जिला है। यहाँ अवर्षा या कम वर्षा एक ओर सूखे को जन्म देती रही, तो दूसरी ओर कभी अतिवृष्टि लहलहाती फसल चौपट करती रही। इस लम्बी व्यथा-कथा से मुक्ति पाने के लिए यहाँ 'जल-क्रान्ति' का श्रीगणेश सम्भवत १९८० मे हुआ। शासन और जन-सहयोग के से जो कार्य प्रारम्भ हुआ उसम अच्छी

सफलताएँ भी मिली।

इसी सन्दर्भ में यहाँ याद आ रहा है भारतीय पौराणिक एक शैव्य गाथा। भगवान् शिव से अभय वरदान पाकर उनका ही भक्त दैत्य भस्मासुर, प्रयोग का पहला मोहरा अपने वरदाता प्रभु शिव को ही बनाना चाहता था। अपने इष्ट पर विश्वास होते हुए भी माया शका बन जाती है। दैत्य का आसुरी मन तम से, तामसिक प्रवाह से, भर गया। वह विवेक-शून्य हो, अविश्वासी होगया। फलत वह शकित हो उठता है। भस्मासुर को भेद-भाव-पूर्ण नीति व्यापक रूप लेती है और वह प्रभु शकर पर ही, उनके दिये 'वर' की परीक्षा हेतु लपकता है। जो कारण के भी परम कारण है जो कैलास और महेन्द्र गिरि पर निवास करते हुए त्रैलोक्य के दुःख को दूर करने वाले है, वे अपने योग-स्वरूप से सृष्टि को कुछ देना चाहते है। फलत वे कुछ कौतुक करने का विचार कर, भोले वरदानी अपने वरदान की वास्तविकता को जानते हुए, उस वर की मान-मर्यादा बनाये रखने के लिये, अपने बचाव हेतु पलायन करते है। भागना तो उनका कौतुक है। शक्ति का सदुपयोग योग्य हाथो से कल्याण कराना है, पर उसका दुरुपयोग अयोग्य हाथो से अनिष्ट कराता है। आत्मरक्षार्थ शिव भागते-भागते सतपुडा से शरण लेते है। सतपुडा की कन्दराओ और उपत्यकाओ को छिपने का उपयुक्त स्थान जान कर वे वहीं ठहर गये। छिपे शिव के कारण वह कन्दरा 'महादेव' गुफा के नाम से जानी जाने लगी। उस पठार व कन्दरा मे ठहरने पर शिवजी को अपने दिये वरदान पर पुनर्विचार करने का अवसर मिला। वे पछताने लगे। पछतावा धीरे-धीरे बढने पर व्यथा में ढल कर आँसू के रूप मे छलछला आया। 'नव' करुणासिक्त आँसू महादेव के मन को धैर्य दिला गये, किन्तु 'देव' के अश्रु तम 'नवा' हो, सदैव उस छोटे उपत्यका महादेव से दुखी और देनवा' के रूप मे बहकर स्मृति चिह्न बन गये। छोटा महादेव का छलछलाता झरना और 'देनवा' आज भी प्रवाहित है। जन-हितार्थ यह मन-व्यथा जल क्रान्ति ही है।

निर्झरिणी 'डेनवा' छोटे महादेव—सतपुड़ा—से प्रवाहित होकर धरती और मानव की प्यास बुझाती है। 'डेनवा' का शीतल जल 'बन भुवन और भृग भगत' के पास शिवरात्रि पर्व पर भरे विशाल मेले मे आये, शिवभक्तो की प्यास हर कर आनन्द भर देता है। 'नोहा' मे जल त्रिधारो को बहाया जाता है, अब तो शिव की संगमरमर की विशाल मूर्ति स्थापित हो चुकी है। दर्शनार्थ आए भक्तगणो को यह शिव मूर्ति नवोत्साह व उमंग से भर देती है।

मध्यप्रदेश का पर्वतराज सतपुड़ा, विभु ओंकार के प्रति भक्ति-भाव मे करुणामिश्रित हो, सहानुभूति मे, सिकुड़-सिकुड़ कर सात मोड़ो मे विभक्त होगया है। सात पठारो मे होजाने से ही सतपुड़ा के रूप मे यह पर्वत विख्यात होगया। मर्मवेदना से उसका हृदय ऐसा धँसा कि धँसनघाटी का उदाहरण 'पाताल कोट' बन गया और उसमे भी करुण जलधारा प्रवाहित होगई। ऐसे ही कितने झरने तुलतुल कर फूट पड़े। उनमे से तामिया-पिपरिया-पथ पर एक तुलतुला' के नाम से प्रसिद्ध होगया। महादेव के पठारो मे, घोर वनाचल मे पिपासा शांत करती ये जल-धाराएं कितने ही रूपो मे धरती-मानव-पशुओं की तृष्णा शांत कर रही है। यह प्रकृति की देन कही जाये या प्रकृति द्वारा की गई 'जल क्रान्ति', जो प्रकृति ने वनाचल, शिखराचल मे जल के रूप मे लगाये हैं। ये स्रोत सतपुड़ा के महादेव उपत्यका मे ही नही, जहां कही प्रकृति के हरित हाथ जगन्नाथ बने, वही कुछ प्रति शत जल उसके हृदयांचल स्रोत, नाला, नदी या झील, सरोवर के रूप मे प्रकट हो मानवीय हित मे नीर-क्रांति का महत्वपूर्ण अंग बन गया जैसे पठारो का अहम गल कर द्रवित हो फूट पड़ा हो, बह गया हो।

तामिया के डाक बंगले से लगभग दो किलोमीटर दूर महादेव उपत्यका के उतार-चढ़ाव से होकर 'छोटा महादेव' नामक स्थान पर उपत्यका के बीच मे झरझराता, निरन्तर छलछलाता स्रोत, ऊपर से नीचे गिरता तुलतुला जल-प्रपात मोती धारा बन कर आह्लाद मे भर देता है। ऐसा लगता है जैसे किसी बालक के विराट सेपथु चरण

गर्जन की पायल पहन कर, नर्तन कर थिरक-थिरक कर, पठार के आर-पार राग-जल भर देते है। यही राग कुछ-कुछ विराग भर, अपने अहम को गला-गला कर बादलो के विविध रूपो मे अनेक स्रोतो मे झर रहा है, और कल-कल कर प्रवाहित होरहा है। सतपुडा की भुजायें इस जिले को आलिंगन मे आबद्ध कर, अपने हृदय का स्नेह आर्द्र होकर दे रही है। इसी लिये छिन्दवाडा से १५-१६ किलो मीटर दूर, नागपुर जाते समय रेल-मार्ग मे ही दिखाई देने वाला कुकडी खापा जलप्रपात'— 'जल जीवन है' —का नारा लगाता — किलकारी भरता सुनाई देता है, जैसे वह किसी शिशु को आह्लादित कर देने वाली किलकारी की मधुर ध्वनि हो।

नट (बोल्ट) की तरह पेंच नदी सतपुडा श्रेणी से निकल कर अपनी विशाल भुजा जल-धाराओ से भर लेती है। यह भुज-धारा बढ कर कामठी—नागपुर के पास 'कन्हान' [नदी] मे मिल जाती है। 'कन्हान और जाम' भी सतपुडा के पश्चिमी पठार मे प्रवाहित हो प्राचीन ऐतिहासिक देवगढ, जो किसी समय गोण्ड राजाओ के राज का केन्द्र था, पहुँचती है। देवगढ का किला भी कन्हान का स्नेह, उसके समीप स्थित रहकर, दरशाता रहा। इच्छाएँ स्थायी नही होती। कभी वैभव से विभूषित यह किला, आज अपने वैभव को न बचा पाने के कारण धराशायी हो उजाड वीरान खण्डहर होगया है। जो सत्य है, वह शिव है। शिव ही कल्याण-कारक है। 'जाम और कन्हान' नदियाँ भी दक्षिणांचल के वन-वैभव को एक ओर बनाये हुए हैं, तो दूसरी ओर कपास-ज्वार की उपज तथा वनोपज को पैदा करने मे वे योग देती है। भारत मे सन्तरा इसी नीर के एक भू-भाग मे आर्द्र मासल रूप ले लेता है। जल-माटी की यह कृपा है कि जहाँ तापमान झुलसा देता है, वहा वह गला तर करने के लिये अनूठा स्वादिष्ट फल सन्तरा भी देता है। अनुपम देन है इस भाग की, जाम कन्हान की, यहाँ की माटी की।

सतपुडा के इन पठारो के स्रोत—झरनो मे, बटकाखापा को हरद' और हर्रई के पास प्रवाहित 'शक्कर' का भी विस्मरण नहीं किया

जा सकता। जु गावानी और अगरवाडा के पास 'टेल' महादेव की ओर जाने पर एक और पग-पथ के प्रारम्भ-द्वार जुन्नारदेव पर झरना प्रपात है। और भी ऐसे कितने अनाम-नाम प्रपात — झरने एक ऐसे कुरुक्षेत्र की याद दिला देते है, जहा भीष्म का बाणो से छिदा, बाणों की शय्या पर लेटा शरीर अर्जुन के बाण से गंग-धारा-प्रपात-मा फूट भीष्म के कण्ठ को तर कर आशीष दे रहा है। कल और आज की सन्धि है— 'नल का जल नल मे'। कल की बात व्यक्त करता है यह श्लोक :

> 'उत्पातन्ती ततो' धारा वारिग्यो विमला शुभा।
> शीतस्यामृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्याम,
> अतर्पयत् तत पार्थ शीतया जलधारया,
> भीष्म करुणाम्बुधि दिव्यकर्मपराक्रमम्।

तो आज की बात व्यक्ति कहता है— 'जल नल में'। १६८० मे जलक्रान्ति का युग इस जिले मे आता है। भूगर्भीय परिस्थितियो मे बाढ और सूखा की आँखमिचौनी रँग लाती है। 'नल मे जल' योजनानुसार नल कूपो मे आवश्यक मात्रा मे जल प्राप्त करने का कार्यक्रम बना था। अत्यन्त कठिन प्रयोग है यह। और इस कठिन प्रयाग से जल प्राप्त करना वास्तव मे कल के भीष्म को, अर्जुन के तीर से, भू से जल-धारा के रूप मे जल पिलाना है। प्रकृत जलक्रान्ति, वन के वृक्षों की कटाई से प्रभावित हुई। तब यांत्रिकी — सिचाई योजनाओ के शासन का लक्ष्य—जुटे प्रयास और उपलब्धि के पार्श्व मे— मन मे अपरिमित उत्साह, धैर्य से नलकूपो के अनवरत खनन का है, जो कभी मुड़ कर नही देखता निरन्तर आगे ही बढ़ रहा है तथा दुर्गम स्थान पर दुस्साहसपूर्ण जोखिम भरे स्थानों पर जल-योजना को पूरा करने मे 'जल-क्रान्ति का नारा-बुलन्द कर रहा है।

प्राकृतिक स्रोत मे आधुनिक ड्रिलिंग मशीनें ला कर - आवश्यकता की पूर्ति करना ही निष्ठा का प्रतीक है। पूरे मध्यप्रदेश मे छिंदवाडा जिले मे नल-जल-योजना सर्वाधिक है। तामिया का छोटा महादेव

पेयजल-योजना कम महत्वपूर्ण नहीं पानी की जम गग घग बा
ग नलिग करना ल जस जना का महत्वपूर्ण गफा गा है ग्राम
म नल-जल-योजना से पेय जल उपलब्ध होरहा है।

जिले के शहरी क्षेत्र जामई मे ५५.१० लाख की लागत से पेय-जल-प्रदाय होरहा है। इस जिले मे शहरी क्षेत्रों मे २,४६,२८७ और ग्रामीण क्षेत्रों मे ८,८६,७२५ लोग निवास करते है, जिनमें ग्रामों की सख्या १६१३ के करीब है। समस्यामूलक ग्राम १८६३ है। ११ अप्रेल १६८८ तक एक भी समस्यामूलक ग्राम शेष नही रहा। सूखे के कारण पेय जल की विशेष व्यवस्था की जा चुकी है। अकस्मात् पम्प खराब होने पर टैंकरो से जल-पूर्ति कर न्यूनतम आवश्यकता को पूरा कर 'नीर-क्रान्ति' का नारा जैसे बुलन्द किया जा रहा हो। आज जल-क्रांति 'चरैवेति-चरैवेति' क सिद्धात पर प्रशासन चला रहा है। 'घर मे नल'-योजना पर अनवरत कार्यरत होने से हजारो समस्या-मूलक ग्रामो मे हजारो हैंडपम्प स्थापित है, जिनसे मवेशियो को भी शुद्ध जल मिल रहा है।

छिंदवाड़ा जिले का अधिकाश भाग कम वर्षा अवर्षा के फल-स्वरूप प्रभावित होता रहा है। प्राकृतिक सुविधाएँ स्रोत, झरने, नदियाँ, तालाब और वर्षा का जल भू-गर्भ मे मिल कर चला जाता है। पर्या-वरण का जल, जो अहम भूमिका का निर्वाह करता है, कई बार धोखा द जाता है। इस लिये जल के तेवर के लिये नीर-क्रान्ति' छिंदवाड़ा मे सहायक है।

सारी परिक्रमा सतपुड़ा से उद्गम होने वाली पुण्यदायिनी और पूजनीया नदियों के क्षेत्र के चतुर्दिक् चल रही है। इसका उद्देश्य पूर्व पाषाण और नव पाषाण-युग के इतिहास से लेकर सुनियोजित प्रकृति से सम्प्रति जीवन मे 'जल' को धारण कर सास्कृतिक जीवन मे बदलाव लाना है। जाम, शक्कर, कन्हान, बेनवा, पेंच नदियो का दक्षिण पूर्वी सीमा पर जबर्दस्त मोड़, छिंदवाड़ा के जन-जीवन को मोड़ [दिया]

दे सकने में समर्थ है । छिंदवाड़ा नगर में निर्मित और जिले के अन्य नगरों में निर्मित, 'जलत्राप्ति' को सूचक आर-टंकियाँ पेयजल जैसे जटिल समस्या के हल की प्रतीक है । मानवीय आधार पर तालमेल के साथ सहयोग कर इस समस्या पर काबू पाया जा सकता है ।

छिंदवाड़ा को जो प्राकृतिक सुविधायें मिली है, उनका परिणाम ही है कि यह साग-सब्जी-उत्पादन मे प्रसिद्धि पा गया है । गोभी, आलू टमाटर, कुम्हड़ा, प्याज नागपुर, भिलाई और कलकत्ता तक मशहूर है गेहूँ, चना, मक्का, मूँगफली, सोयाबीन, गन्ना, गन्नगा, कपास में भी यह जिला पीछे नहीं है । 'जल' की कृपा ही तिलहन का रेकार्ड बनाती है। मंत्रिपरिषद ने निर्णय लिया था कि "राज्य में उपयोग में नही लाई गई सिंचाई-क्षमता के अधिक उपयोग के लिए एक अभियान चलाया जायेगा और रबी फसलो में कम से कम ऐसी २५ प्रति शत सिंचाई क्षमता का दोहन किया जायेगा तथा राज्य के सभी जिलो मे पीने के पानी की समस्या पर पुन विस्तृत विचार - विमर्श किया जायेगा ।'

मुख्यमंत्री की घोषणानुसार– 'इस संकट के समाधान के लिये हमें लोगो को राहत पहुँचाने और पेय जल की समस्या को प्राथमिकता के साथ हल करना है । इस समय ५ ७ लाख लोग राहत कार्यो मे लगे हुए है । पेय जल की समस्या के हल के लिये युद्धस्तर पर कार्य किया जा रहा है ।'

कम वर्षा या बाढ़िया आने पर जब-जब सूखा पड़ता है, कम वर्षा होती है, तब-तब भू-जल स्तर नीचे चला जाता है । जल स्रोतों की पूर्वस्थित जल आवक क्षमता घट जाने पर गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाया करती है । ऐसे समय में दूसरे वैकल्पिक स्रोत की खोज की जाती है । यह खोज जल-प्रदाय करने में सहायता करती है । उसमें उन कार्यों को प्राथमिकता दी जाती है, जिनमे खुदे कुओं को अधिक गहरा कर, उनमें बोरिंग कर अथवा नलकूपों का ब्लास्टिंग करवाना शामिल

रहता है। पर्यावरण पर पूर्ण ध्यान देते हुए, जल से पर्यावरण और पर्यावरण से जल को स्थायी रूपरेखा बना कर, पेड़-पौधे बाग-बगीचे, पुष्पोद्यान लगाकर जिले से सूखे का स्थायी हल 'जल-क्रान्ति' अर्थात नल से जल और प्राप्त जल को नल में लाकर उसे प्रत्येक घर तक पहुँचाया जाता है। यह आज की जल-क्रान्ति सुख-सन्तोष दे सकेगी।

ऐतिहासिक जीवन-परम्परा को जीवन देती है नदियाँ। यह जल की अपार महिमा है। जो मध्य प्रदेश का उत्स है, उस नर्मदा में 'हरद-अक्कर' न जाने कितनी शोख-नखरो के करवट बदल-बदल कर, सतपुड़ा के बहते वनों के मध्य पथ बना मिलती है। १५वीं शती में गौड़ राजा संग्राम ने चौगान गाँव का किला इस संगम पर बनाया था, किन्तु वह अब अपने वैभव के लदे दिनों पर आँसू बहा रहा है। कभी-कभी प्राकृतिक सम्पदा भी, घने जंगल भी, जल के पुण्य फल से खूब घन हो गये थे। प्राकृतिक प्रकोप, भूकंप या ज्वालामुखी, अतीत के प्रतीक चिह्न छोड़ गये हैं। ये घने वन भू-गर्भ में दब कर अमूल्य निधि 'शक्ति-ऊर्जा' हीरा न बन कर 'कोयला' ही बनकर रह गये। यही 'कोयला' कहीं पृथ्वी में रासायनिक व ऊपरी दबाव की चपेट में आ गया होता तो, यह जिला भी जोहान्सबर्ग [द० अफ्रीका] की खान होता, हीरे की खान होता।

जल-क्रान्ति तब भी करिश्मा दिखाती रही है और आज वह सार्वभौम जरूरत के कारण अब नल और अमकूप के माध्यम से, आधुनिकतम तकनीकी के द्वारा दूषित से शुद्ध, आयरन क्लोराइड से रहित होकर, रोग-मुक्त करने में क्रान्तिकारी रूप में सूखा से राहत दिला पायेगी। पेय जल के संकट से मुक्ति का प्रयास तथा साफ पानी उपलब्ध कराने की पहल ही 'जल-क्रान्ति' है, जिसके अन्तर्गत पेय जल के स्रोतों से पानी उपलब्ध कराने के साथ अस्थायी तौर पर पानी अन्य क्षेत्रों से आपूर्ति की व्यवस्था, कहीं-कहीं आस-पास से पानी लाकर काम चलाना तथा नदी-नालों पर स्टाप डेम बनाने की योजनायें भी हैं। स्थायीकरण

हेतु सरकारी जलनीति में जलभंडार-निर्माण तथा जल-पहुँच तक नदियों को जोड़ना भी प्रस्तावित है।

पानी की बचत और माँग के अनुसार खर्च की व्यवस्था के संयमित उपयोग से सिंचाई में परिवर्तन आयेगा तथा परिशोधित जल उपयोग में लाया जायेगा। यह क्रान्तिकारी पहल ही जल से समृद्धि की ओर ले जायेगी और सूखा और जल-संकट से मुक्ति दिला पायेगी।

समीक्षात्मक

○ एक नई लम्बी कविता के साथ

एक नई लम्बी कविता के साथ

"माँ के लिये"– कवि डा. जगदीश गुप्त

काव्य की अजस्र धारा करुणा की पृष्ठभूमि पर प्रवाहित हुई है। नई कविता भी वेदनानुभूति के सान्निध्य में आस्था-अनास्था, मानव-प्रतिष्ठा तथा लोक मंगल की ओर बढ़ती वैचारिक भावुकता, चिंतनात्मकता, अलगाव, स्पष्टता और समग्रता के साथ जीवन के प्रति मुखर हुई है। इसमें भी अर्थात्मक लय का प्रचुर प्रभाव है।

'माँ के लिये–डा० जगदीश गुप्त की एक लम्बी कविता के साथ मैंने जिन पलों को जिया-पिया है, उसे ही इस लेख में दिया है। 'शक्ति और सामर्थ्य' [नई कविता–प्रकाशन विभाग] लेख में डा० जगदीश गुप्त ने लिखा है– 'नई कविता समाज की सजीव एवं सजग इकाई के रूप में व्यक्ति को प्रधानता देती है। वह व्यक्ति के माध्यम से लोक-मंगल तक पहुँचना चाहती है।'

'माँ के लिये' में दीवार घड़ी, यानी काल-सत्य पर अपने मन्तव्य के साथ, सुइयों का दंश मनुष्य ने सहा है। हर घटना-चक्र चुभा है, अब धुँधले होते हैं – समय की पहचान की पकड़ ढीली पड़ने लगी है–

"माँ हर बार कहती थी
इस घड़ी को बदल दो,
इसमें मुझे समय
पहचाना नहीं जाता।
एक तो मेरी बूढ़ी आँखें–

उसे देख नहीं पाती,

दूसरे उसके धुँधले अंक,

लाख मुनहले हों,

पर मुझे दिखाई नहीं देते ।"

सन् उन्नीस सौ चौवन में 'नई कविता' डा० जगदीश गुप्त के सम्पादन मे निकली थी। इसके आस-पास रचनाओ को 'नई कविता' का स्वर मिला। समसामयिक जीवन के प्रति सजगता एव व्यक्तिवाद के विद्रोहात्मक स्वर को नई कविता मे वाणी मिली। आज का काव्य तो चर्चित नई कविता ही है।

डा० जगदीश गुप्त के 'हिम-विद्ध', 'शब्द-दश', 'नाव के पाँव' कविता-सग्रह नामसे तारसप्तक के पूर्व ही निकल चुके थे। 'माँ के लिये' एक लम्बी नई कविता है, जिसमे व्यक्तित्व-गौरव की प्रतिष्ठा की गई है। इसमे स्मृतियो के तारो मे बुनी आत्मशक्ति का अभिव्यञ्जन हुआ है। कहीं-कहीं पर पीढ़ीगत वैचारिक अलगाव तथा आस्था-अनास्था के विश्वासी रूप भी मिलते है। मा का सान्निध्य तो स्नेह-सजीवता और समग्रता के बिम्ब के साथ सहज ही सुलभ हो जाता है। पौराणिक आस्था माँ की मुक्ति मे रसयुक्त हो, सत्य को खण्डित नहीं होने देती। वह लोक-मगल को स्थापित करती है। इसकी अखण्डता के सामने आज का आदमी बहुत छोटा पड जाता है। माँ का अस्तित्व, धारा के अस्तित्व की तरह, निरन्तर ममत्व की धार-सा प्रवाहित है। सन्तोष-असन्तोष के मध्य, उसमे उमडती करुणा, ममता और आहत वात्सल्य इत्यादि विचारो को कवि के मन ने वहाँ तक स्वीकार किया है, जहाँ तक मानवीय सत्य प्रकट नहीं हो जाता।

"उनका परितोष,

उनका सन्तोष

बार बार

आँसू बनकर छलक उठता था।

मुझे लगता है,

इतने बच्चो का होना

माँ को कभी बुरा नही लगा।

वह माँ ही क्या—

जिसको बच्चे का जन्म न भाये।

उनका निर्मल वात्सल्य

गगा की धार की तरह

अजस्र बहता रहा

मेरे भीतर, मेरे बाहर।"

पीढियो के मत एव विचारो मे सदैव अन्तर पाया जाता है। माँ और पुत्र दोनो के वैचारिक समय-सापेक्ष्य अनुभव की स्मृति किसके आगे खुलेगी — वह बात जो खूटी मे बँधी अपनी गाँठ बन जाये। सहज, बोल-चाल की भाषा म इन पक्तियो की गंभीरता को देखा जा सकता है।

"एक ऐसा सन्तोष

जो सन्तोष की ही वाणी जानता था।

कभी करुणा, कभी ममता

कभी आहत वात्सल्य।

उनकी कही हर बात

कहाँ मान पाता था मै, चुपचाप।

उनका हर विचार

कहाँ हो पाता था मुझे स्वीकार।

पर मै शान्त होने पर

स्वय सोचने लगता—

मुझे नहीं तो

किससे कहेगी वे अपनी बात,
किसके आगे खोलेगी,
खूटी मे बँधी अपनी गाँठ।"

जो उलझन नई पीढ़ी मे उत्पन्न होती है, उसे नकारा नही जा सकता। सहानुभूति के माध्यम से वह निर्णायक विन्दु के लोक-सत्य तक पहुँच जाता है।

'माँ के लिये' मे विराट के सम्मुख लघुता-बोध और उसके अर्थ को भी कवि ने शब्द दिये है। यह अस्तित्व माँ के क्षितिज मे डूबने-उतराने बिम्ब मे रूपायित हुआ है।

आदमी अपने भीतर का अर्थ भी
स्वय ही खोजता है,
प्रश्न पर प्रश्न पूछता है—
पर अपने-आप वह अपने से निरन्तर
कितनी दूर देख पाता है,
अपने भीतर का आकाश।"

o o o o

'माँ मेरा क्षितिज थी;
मै न जाने कितनी बार,
उनमे डूबा हूँ, उतराया हूँ॥
उनके साथ,
जिन्दगी का बड़ा दौर
पार कर आया हूँ।
अब भी उनकी धार
मेरे रक्त में भीतर बह रही है।'

मुझे लगता है,

इतने बच्चों का होना

माँ को कभी बुरा नहीं लगा।

वह माँ ही क्या—

जिसको बच्चे का जन्म न भाये।

उनका निर्मल वात्सल्य

गंगा की धार की तरह

अजस्र बहता रहा

मेरे भीतर, मेरे बाहर।"

पीढ़ियों के मत एवं विचारों में सदैव अन्तर पाया जाता है। माँ और पुत्र दोनों के वैचारिक समय-सापेक्ष्य अनुभव की स्मृति किसके आगे खुलेगी — वह बात जो खूंटी में बँधी अपनी गाँठ बन जाये। सहज, बोल-चाल की भाषा में इन पंक्तियों की गंभीरता को देखा जा सकता है।

"एक ऐसा सन्तोष

जो सन्तोष की ही वाणी जानता था।

कभी करुणा, कभी ममता

कभी आहत वात्सल्य।

उनकी कही हर बात

कहाँ मान पाता था मैं, चुपचाप।

उनका हर विचार

कहाँ हो पाता था मुझे स्वीकार।

पर मैं शान्त होने पर

स्वयं सोचने लगता—

मुझे नहीं तो

किससे कहेंगी वे अपनी बात,
किसके आगे खोलेंगी,
खूँटी में बँधी अपनी गाँठ।"

जो उलझन नई पीढ़ी में उत्पन्न होती है, उसे नकारा नहीं जा सकता। सहानुभूति के माध्यम से वह निर्णायक बिन्दु के लोक-सत्य तक पहुँच जाता है।

'माँ के लिये' में विराट के सम्मुख लघुता-बोध और उसके अर्थ को भी कवि ने शब्द दिये हैं। यह अस्तित्व माँ के क्षितिज में डूबते-उतराते बिम्ब में रूपायित हुआ है।

आदमी अपने भीतर का अर्थ भी
स्वयं ही खोजता है,
प्रश्न पर प्रश्न पूछता है—
पर अपने-आप वह अपने से निरन्तर
कितनी दूर देख पाता है,
अपने भीतर का आकाश।'

o o o o

'माँ मेरा क्षितिज थी;
मैं न जाने कितनी बार,
उनमें डूबा हूँ, उतराया हूँ॥
उनके साथ,
जिन्दगी का बड़ा दौर
पार कर आया हूँ।
अब भी उनकी धार
मेरे रक्त में भीतर बह रही है।'

मुझे लगता है,

इतने बच्चों का होना

माँ को कभी बुरा नहीं लगा।

वह माँ ही क्या—

जिसको बच्चे का जन्म न भाये।

उनका निर्मल वात्सल्य

गंगा की धार की तरह

अजस्र बहता रहा

मेरे भीतर, मेरे बाहर।"

पीढ़ियों के मत एवं विचारों में सदैव अन्तर पाया जाता है। माँ और पुत्र दोनों के वैचारिक समय-सापेक्ष अनुभव की स्मृति किसके आगे खुलेगी – वह बात जो खूटी में बँधी अपनी गाँठ बन जाये। सहज, बोल-चाल की भाषा में इन पंक्तियों की गंभीरता को देखा जा सकता है।

"एक ऐसा सन्तोष

जो सन्तोष की ही वाणी जानता था।

कभी करुणा, कभी ममता

कभी आहत वात्सल्य।

उनकी कही हर बात

कहाँ मान पाता था मैं, चुपचाप।

उनका हर विचार

कहाँ हो पाता था मुझे स्वीकार।

पर मैं शान्त होने पर

स्वयं सोचने लगता—

मुझे नहीं तो

किससे कहेगी वे अपनी बात,
किसके आगे खोलेंगी,
खूटी में बँधी अपनी गाँठ।"

जो उलझन नई पीढ़ी में उत्पन्न होती है, उसे नकारा नहीं जा सकता। सहानुभूति के माध्यम से वह निर्णायक बिन्दु के लोक-सत्य तक पहुँच जाता है।

'माँ के लिये' में विराट के सम्मुख लघुता-बोध और उसके अर्थ को भी कवि ने शब्द दिये हैं। यह अस्तित्व माँ के क्षितिज में डूबते-उतराते बिम्ब में रूपायित हुआ है।

आदमी अपने भीतर का अर्थ भी
स्वयं ही खोजता है,
प्रश्न पर प्रश्न पूछता है—
पर अपने-आप वह अपने से निरन्तर
कितनी दूर देख पाता है,
अपने भीतर का आकाश।"

० ० ० ०

'माँ मेरा क्षितिज थीं;
मैं न जाने कितनी बार,
उनमें डूबा हूँ, उतराया हूँ॥
उनके साथ,
जिन्दगी का बड़ा दौर
पार कर आया हूँ।
अब भी उनकी धार
मेरे रक्त में भीतर बह रही है।'

इस अभिव्यंजित स्वर में सम्भवतः राष्ट्र, राष्ट्र में जन्मा जन, आज अपने नैतिक आचरण (चरित्र) से, कितना घुला-मिला है या कितनी दूर चला गया है ? माँ की वास्तविक स्मृतियाँ और प्रसंगानुकूल घटनाएँ, माँ की गोद में, सान्निध्य में आत्मीय भाव से आज जागृत हो गई हैं। प्रेरणा का यह अपरिमित क्षितिज माँ के उसी अगाध रक्त से निर्मित हुआ है, जिसमें कितनी ही प्रतिभाएँ जन्म लेती हैं। माँ की वह केशराशि, जो शृंगार और सौंदर्य का कभी अपरिमित आधार थी, समय के सम्मुख, वैधव्य के संत्रास में, सफेद-रूखी और सारहीन होगई। रोजमर्रा के व्यवहार में ये केश झंझट बन गये थे। अतः समय के साथ काट दिये गये। समाज के कल्याण हेतु एक व्यापक संत्रास को, व्यक्ति सहता और गलित परम्परा को उखाड़ फेंकता है। इतना साहस तो वह जुटा पाता है। भाषा की सरलता में जो गहराई दिखाई देती है, उस पर प्रतीक-चित्रात्मकता की शब्द-कूची सिद्ध कलाकार ने खींच दी है। उनकी मृत्यु को कितनी सहजता के साथ रूपायित किया गया है। उनके अनेक प्रसंग अब स्मृति-दंश बन गये हैं—

'सोते — सोते
किसी साँप ने
डस लिया था उसे,
जो पलँग पर
बेहोश सो रही थी।
उनकी आवाज टेप कर ली गयी है,
अब वह साँप
सदा उन्हें डसता रहेगा,
आवाज के सहारे।'

अनेक स्थानों पर मानवीयता की पुनर्प्रतिष्ठा की अनिवार्यता सृष्टि के विकास क्रम में होती है समय की विडम्बना देखिए जिसे

अपनी गोद मे पहले खिलाया वही शिशु माँ के वृद्धा रोगी, अशक्त होने पर, सेवा-भावना से ही सही, प्रौढ हो माँ को गोद मे उठाता है। यहाँ अनुभव पक गया है। सत्य कैसे प्रकट हो गया है ?

"गोद में उठाने वाली माँ को
गोद मे उठाने का अनुभव—
उनके बीमार – निढाल शरीर को
अपनी जागती – मोनी बाहो मे
सहेजने का अनुभव—
अपनी ही छाती पर, देर तक
उनके सर टिकाये रहने का अनुभव—
मेरे मन मे
उनके प्रति
अजब-सा भाव उत्पन्न करता है,
जिसमे एकात्मता के साथ
विडम्बना भी रहती थी,
और ममता के साथ
निरीहता भी।"

माँ विराट स्वरूप है और कवि प्राणी (आत्मा)। कभी यही आत्मा सृष्टि से अपने को बडा समझने लगती है। बडप्पन का बोध—जैसे, एकाएक छोटे से बडे होने का अनुभव होता है। परन्तु कवि को अपनी लघुता का बोध है, अत. वह उस जमीन को कैसे छोड़ सकता है, जिसमे वह पैदा हुआ—

"उनकी बद आँखो के भीतर,
मेरे छोटे से अकस्मात

बड़े होजाने का अनुभव;
मेरे और उनके मन मे
रचती है अन्तहीन
अनुभवो की शृंखला,
जहाँ मै बड़ा होते हुए भी,
बार–बार छोटा होजाता हूँ–
उनकी हृदय की विशालता के आगे।
उनकी साँसो मे
मेरी साँसें बजती हैं,
और उनकी धड़कनो मे
बोलती है मेरी धड़कने।"

सीता ने 'लव-कुश' को, शकुन्तला ने 'भरत' को शिक्षा दी। इसी तरह हर माँ अपने पुत्र के व्यक्तित्व-निर्माण मे आगे रहती है। माँ ही है जो प्रथम गुरु की भांति कवि को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दृष्टि देती है। निःसन्तान रहने पर अपने को अपमानित समझने वाली माँ, पुत्रवती होने में सम्मान समझती है। जीने की प्रबल-इच्छा मानवीय है। मरणासन्न होने के पूर्व माँ मे जिजीविषा का भाव प्रबल था, किन्तु मरणासन्न को कष्ट, उसके सकेत, न बचने के भाव अब मुक्ति की चाह मन को व्यक्त करते है। 'माँ के लिये' मैं अनेक पदो मे स्वस्थ जीवन-दर्शन मुखर हो उठता है। मानव के विश्वास की मृत्यु नही होती-- माँ (व्यक्ति) और कवि (समाज) मे समन्वय की भावना का वह जो सहज सन्तुलन यहाँ अभिव्यक्त हुआ है, वह अनुभूति से परिष्कृत हो लोक-मगल बन जाता है। –

'पर किसी समय तो अन्त होना ही था,
उनके विश्वास का नही
निःश्वास का।'

० ० ० ० ०

बाहर से रामायण

भीतर से महाभारत ।

'रामायण सिख अनुहरत

जग भयौं भारत – रीति ।'

आत्मीयजनों से झगड़ने की प्रवृत्ति नारी में सहज-शाश्वत है। माँ भी, अपने भाई से तो कभी अपने पति से, अपनी खीझ व्यक्त करती है। नाराजगी-प्रसन्नता पुत्रों को भी नही छोड़ती। सामाजिक दायित्व का अहसास ही नारियों में झगड़ने की खीझ निकालने को विवश करता है–

"तुम्हारे बाबू से भी

मेरा बराबर झगड़ा होता था,

जब वे ताश – पचीसी में

बेहद डूब जाते थे।

करवा चौथ को वे सारी रात नहीं आये,

मेरी पूजा धरी की धरी रही।'

पिता का जीवन–कैनवास कवि के बालक होने तक ही सीमित रहा। पिता की मृत्यु होगई है, पर उस पर बालक को विश्वास नहीं होता।

"मेरे बचपन को बरसों तक लगता रहा—

वे मरे नहीं,

सिर्फ सोये हुए हैं–

सफेद चादर ओढकर।"

किन्तु माँ का जीवन, कवि के जीवन मे एक विशाल कैनवास की तरह है, जिसमे 'माँ की मृत्यु' के पश्चात् अनेक स्मृति – प्रसग चित्रात्मकता लिये रुपायित होजाते हैं।–

बड़े होजाने का अनुभव,
मेरे और उनके मन में
रचती है अन्तहीन
अनुभवों की शृंखला,
जहाँ मैं बड़ा होते हुए भी,
बार-बार छोटा होजाता हूँ-
उनकी हृदय की विशालता के आगे।
उनकी साँसों में
मेरी साँसें बजती है,
और उनकी धड़कनों में
बोलती हैं मेरी धड़कने।"

अ वि नु ज र व म र f र ि ह ।

सीता ने 'लव-कुश' को, शकुन्तला ने 'भरत' को शिक्षा दी। इसी तरह हर माँ अपने पुत्र के व्यक्तित्व-निर्माण में आगे रहती है। माँ ही है जो प्रथम गुरु की भाँति कवि को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दृष्टि देती है। निःसन्तान रहने पर अपने को अपमानित समझने वाली माँ, पुत्रवती होने में सम्मान समझती है। जीने की प्रबल-इच्छा मानवीय है। मरणासन्न होने के पूर्व माँ में जिजीविषा का भाव प्रबल था, किन्तु मरणासन्न को कष्ट, उसके संकेत, न बचने के भाव अब मुक्ति की चाह सत्य को व्यक्त करते हैं। 'माँ के लिये' में अनेक पदों में स्वस्थ जीवन-दर्शन मुखर हो उठता है। मानव के विश्वास की मृत्यु नहीं होती- माँ (व्यक्ति) और कवि (समाज) में समन्वय की भावना का वह जो सहज सन्तुलन यहाँ अभिव्यक्त हुआ है, वह अनुभूति से परिष्कृत हो लोक-मंगल बन जाता है। —

'पर किसी समय तो अन्त होना ही था,
उनके विश्वास का नहीं
निःश्वास का'

o o o o o

बाहर से रामायण

भीतर से महाभारत ।

'रामायण सिख अनुहरत

जग भयौ भारत – रीति ।'

आत्मीयजनों से झगड़ने की प्रवृत्ति नारी में सहज-शाश्वत है। माँ भी, अपने भाई से तो कभी अपने पति से, अपनी खीझ व्यक्त करती है । नाराजगी-प्रसन्नता पुत्रों को भी नही छोडती । सामाजिक दायित्व का अहसास ही नारियों में झगड़ने की खीझ निकालने को विवश करता है—

"तुम्हारे बाबू से भी

मेरा बराबर झगडा होता था,

जब वे ताश – पचीसी में

बेहद डूब जाते थे ।

करवा चौथ को वे सारी रात नही आये,

मेरी पूजा धरी की धरी रही ।"

पिता का जीवन–कैनवास कवि के बालक होने तक ही सीमित रहा । पिता की मृत्यु होगई है, पर उस पर बालक को विश्वास नही होता ।

"मेरे बचपन को बरसो तक लगता रहा—

वे मरे नही,

सिर्फ सोये हुए हैं–

सफेद चादर ओढ़कर ।"

किन्तु माँ का जीवन, कवि के जीवन में एक विशाल कैनवास की तरह है, जिसमे 'माँ की मृत्यु' के पश्चात् अनेक स्मृति – प्रसग चित्रात्मकता लिये रूपायित होजाते हैं ।—

माँ बाल-विवाह का शिकार हुई थीं। आठ वर्ष की आयु विवाह हुआ। उनका सारा बचपना ससुराल आकर भी वैसा ही बना रहा। कवि ने बड़ी ईमानदारी के साथ भावानुभूति और वैयक्तिक कथ्य का परिचय अनेक प्रसंगों में दिया है। उनके इस अद्भुत सार को स्वीकारना ही पड़ता है। माँ की पूजा की कोठरी सबहालय है जिसमें अन्वेषण होता है। भूली रखी वस्तुएँ खोजने पर वहीं मिलती हैं—

'जिसे वे सब जगह खोज कर हार जाती थीं,
वह भी उनके भीतर की कोठरी में मिल जाता था।
वह कोठरी,
शायद पुश्तैनी कोठरी की तरह थी,
जिसमें सारे कुल-देवता वास करते हैं
और जो कभी खाली नहीं होती थी।
आज लगता है, वे स्वयं उन कुल-देवताओं में समा गयी हैं।

जैसे उनका संसार उनकी पूजा की कोठरी है, वैसे ही प्राणी का जगत से सम्बन्ध है। इस संसार में क्या नहीं है? हर व्यक्ति का माँ की भाँति, कोठरी के समान, अपना अपना संसार है। 'कोठरी' लोक-व्यापी है। खोना-पाना सांसारिक प्रवृत्ति है। इसी भाँति मानव-जीवन में यात्रा है। यायावरी माँ जीवन भर यात्रा-प्रसंग से जुड़ी रहती हैं। वे यात्रा करती रहती हैं। एक दिन वे अंतिम यात्रा पर अचानक चल पड़ती हैं, जिसमें कोई हड़बड़ाहट नहीं है। उनकी यात्रा के जड़ साथी पड़े रह जाते हैं। माँ की पौराणिक तथा धार्मिक विश्वास के अनुरूप, कवि-पुत्र अपने सारे पूर्वाग्रहों को छोड़, सारे कर्मकाण्डों को, बिना बहस या छेड़-छाड़ के, करता है। उसे माँ का विश्वास ही बड़ा लगता है।

"पर मेरा मन कहीं न कहीं
कचोट कर रहा था

माँ बाल - विवाह का एक रूप थीं । आठ वर्ष की उम्र मे विवाह हुआ । उनका भोला बचपना ससुराल जाकर भी वैसा ही बना रहा । कवि ने बड़ी ईमानदारी के साथ भावानुभूति और वैचारिक कथ्य का परिचय अनेक प्रसगो मे दिया है । उनके इस अद्भुत साहस को स्वीकारना ही पडता है । माँ की पूजा की कोठरी संग्रहालय है, जिसमे अन्वेषण होता है । भूली रखी वस्तुएं खोजने पर वहीं मिलतीं है—

'जिसे वे सब जगह खोज कर हार जाती थी,
वह भी उनके भीतर की कोठरी में मिल जाता था ।
वह कोठरी,
शायद पुश्तैनी कोठरी की तरह थी,
जिसमे सारे कुल-देवता वास करते है
और जो कभी खाली नही होती थी ।
आज लगता है, वे स्वयं उन कुल-देवताओ मे समा गयी है।

जैसे उनका ससार उनकी पूजा की कोठरी है, वैसे ही प्राणी का जगत से सम्बन्ध है । इस ससार में क्या नही है ? हर व्यक्ति का माँ की भाँति, कोठरी के समान, अपना अपना संसार है । 'कोठरी' लोक-व्यापी है । खोना – पाना सांसारिक प्रवृत्ति है । इसी भाँति मानव-जीवन मे यात्रा है । यायावरी माँ जीवन भर यात्रा-प्रसग से जुड़ी रहती है । वे यात्रा करती रहती है । एक दिन वे अतिम यात्रा पर अचानक चल पड़ती हैं, जिसमे कोई हड़बड़ाहट नहीं है। उनकी यात्रा के जड़ साथी पड़े रह जाते है । माँ की पौराणिक तथा धार्मिक विश्वास के अनुरूप, कवि-पुत्र अपने सारे पूर्वाग्रहो को छोड़, सारे कर्मकाण्डो को, बिना बहस या छेड़-छाड़ के, करता है । उसे माँ का विश्वास ही बड़ा लगता है ।

"पर मेरा मन कही न कही
कचोट बचर रहा था

वस्तुतः माँ का श्राद्ध
मैंने माँ के विश्वास से किया
अपने विश्वास से नहीं।
जैसे माँ मुझसे बड़ी थी,
वैसे ही उनका विश्वास भी
मुझसे बड़ा था।"

मनुष्य-केन्द्रित माँ की महिमा निराली है। उनके स्वभाव के विविध रूपों को विविध माध्यम-व्यक्तियों द्वारा विविध रूपों में पहचाना गया है, जो मानवता की उपासना है।

"मेरे लिये 'माँ–' शब्द
मनुष्यता का पर्याय है।
माँ का सम्मान
मनुष्यता का सम्मान है।"

भक्ति-भावना से जुड़ी माँ का मन भक्ति–रस से छलक कर, कंठ में फूट पड़ता है। धर्मग्रन्थों तथा रामायण-महाभारत-गीतादि का गहरा प्रभाव, उनकी अनुगूंज, कवि-मन में गहराई तक छा गई है। वे स्वीकारते हैं कि उनमें भक्ति-रस का गहरा प्रभाव माँ की देन है। यह उन्हें विरासत में मिला है।

"मैंने उनके दूध के साथ
इन सबको भी पिया है,
आज उनकी छाती भले ही सूख गयी हो,
पर उनके हृदय का रस, सीझ कर
मेरे भीतर समा गया है अपने आप।

० ० ० ० ० ०

जिनके लिये रही हों, हों,
पर मेरे लिये वे कभी सूखी अम्मा" नहीं थीं

ससुराल, गृहस्थी, कुल-परिवार, आश्रम, यात्रा और अंतिम क्षणों मे मां साथ रहती है। मातृवियोग गहरे उतर कर विविध दृश्य-विम्बो में जब-तब प्रसंगानुसार उभर कर मन पर गहरी छाप छोड़ देता है। गुप्त जी समस्त सकीर्णताओं से ऊपर उठ कर मानवता की उपासना को अपना ध्येय मानते है।

"जहाँ भी जीवन है,
जहाँ भी जन्म है,
वहाँ 'माँ' होगी ही।
माँ तो सांपो मे भी पूज्य है,
माँ स्वयं काल नही हो सकती।
जैसे सृष्टि कालातीत है
वैसे मा भी।"

इस आत्मकथात्मक दीर्घ कविता (माँ के लिये) मे अनेक विम्ब आये है। मनमे, कल्पना मे वस्तु चित्र बन जाता है, अर्थात वह ऐसा विम्ब बन जाता है, जो काव्य को अर्थलय मे भिगो कर तरबतर कर देता है। यह दीर्घ कविता मानव की प्रतिष्ठा को सस्थापित करती है। वह समाज और व्यक्ति के कर्तव्यो के पौराणिक कर्म-भाव के प्रति आस्था – अनास्था – विश्वास – विद्रोह को विभिन्न विम्बो मे आयाम देती है। मन की सहजता लोक-गीतो मे मुखर हो ओठो पर जब-तब धाधा बोल देती है, और मां के ग्रामीण सस्कार मुखर हो उठते है।

मां की निर्जीव काया पर लिपटी रामनामी चादर के ऊपर रखे गये पान-फूल को देख कर कवि को उस समय– उसकी 'मां' 'लोक-गीत' लगती है। कवि की भावानुभूति मार्मिक हो उठती है।

"जो मेरे भीतर
युगो युगो से

गंगा की धार की तरह,
और आज भी
गंगा – पार से आती हुई
उनकी धुन
अनायास कानों में गूँज जाती है।"

परिस्थितियां तो भावात्मक बोध का बिम्ब है। मानव-जीवन, मे बिम्ब-विधान-कल्पना का महत्व है, जिसके परिवेश में समवेदनाएँ अतीत को प्रत्यक्ष मानव (प्रतिभाओं) पर बिम्बित करती हैं। माँ की पुतलियां स्याह और धुँधली होजाती है। एक सूखी पत्ती (कवि के– प्रतिबिम्ब में) असीम गहराई मे उतरने लगती है–

"मुझे लगता है
उस पत्ती के स्पर्श–भय से
जल नीचे उतरने लगता है,
और फिर
धीरे – धीरे सूखने लगता है।
पत्तो की तरह,
जो अनन्त,
मेरी दृष्टि का पर्याय बन जाता है।
मैं प्रतिबिम्ब की जगह
घबरा कर,
बिम्ब को खोजने लगता हूँ।"

मूर्ति के द्वारा अमूर्ति की पहचान– माँ नहीं है, पर वे वस्तुएँ भाव-प्रेरक बन, माँ को उपस्थित कर देती है और चित्रात्मक होकर, भाव-प्रेषण को सशक्त बना देती है। 'दीवार-घड़ी को बदलने की इच्छा' समय पहचाना त ध ने का तर्क लाख सुनहले होने पर भी घ बजे अक

दिखाई नहीं देता – परोक्ष में राष्ट्र में स्वार्थों की टक्कर होरही है। देश की तस्वीर जन-भावना के रूप में प्रतीकात्मकता के साथ अभिव्यजित होगई है।

'असाध्य वीणा' (अज्ञेय), 'घाटी का आखिरी आदमी (विजयनारायण शाही), 'मुक्ति प्रसग (राजकमल चौधरी), 'खड-खड पाखड पर्व' (मणि मधुकर), आदि लम्बी कविताओ से यह आत्म-कथात्मक लम्बी नयी कविता 'माँ के लिये' भिन्न है। अपने करुण भाव पक्ष को आधुनिक परिपेक्ष्य मे बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक शब्द–चित्रात्मकता के साथ भाव व अर्थलय से वह सराबोर है। वह सरल भाषा प्रयोग के साथ गहन-गभीर भाव मे मन को कही झकझोर देती है तो कही वैचारिक यथार्थ के अकाट्य बिन्दु पर पहुँचा देती है। 'सरोज स्मृति (निराला)' मे पिता का वात्सल्य बेटी के प्रति अभिव्यक्त हुआ है, तो माँ के लिये मे माता-पिता का सन्दर्भ। परम्परा से मा महिमामय है। नारी के विभिन्न रूपो मे माँ का तेवर ही अलग महत्व रखता है। डा० जगदीश गुप्त जहाँ प्रख्यात रेखा-धर्मी है, वही का य-शिल्पी भी। हृदय और मस्तिष्क, भावलय और अर्थलय से सबधित है। वे लिखते है– 'भावात्मकता के कारण ही अर्थलयान्वित होता है और अर्थलय की स्थिति उत्पन्न होती है। भाव की कल्पना विचार–रहित अवस्था मे भी की जा सकती है, जबकि अर्थ मे भाव और विचार दोनो की सश्लिष्टता रहती है। विचारो मे निरपेक्ष शुद्ध भावात्मक धरातल पर, जहाँ लय की प्रतीति हो, वहा 'भाव-लय' की सत्ता मानी जायगी अन्यथा उसे अर्थलय मे ही समाविष्ट करना होगा।' मा के लिये मे भी लय – छन्द समाविष्ट है। डा० जगदीश गुप्त – 'कविता को केवल शब्द लय के सहारे पढ़ने वाला, कविता का सब कुछ खो देने वाला मानते है।" 'निराला' जी का मुक्त छन्द के विषय मे कथन है– "जहाँ मुक्ति रहती है, वहाँ बन्धन नही रहते, न मनुष्यो मे, न कविता में; मुक्त छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमि मे रह कर भी मुक्त है।

'माँ के लिये' एक लम्बी आत्मकथात्मक नयी कविता मे, उसके सूक्ष्म भाव तथा सांकेतिक अर्थ उभरे है- जिनसे स्वर आरोह-अवरो

दर निर्भर होकर निश्चित अर्थ-लय उत्पन्न करते हैं। इस लम्बी कविता को एकात्म-भाव में बांधे रखना, कवि की निश्छल करुणा, ममता, प्रेम एवं साफगोई के कारण है। माँ के मृत्यु-बोध की पीड़ा तथा भय को कवि ने देखा, पहचाना, सेवा-सान्निध्य के समय उस करुण दृश्य को भी देखा, जो 'माँ के लिये' के रूप में हृदय को करुणा से भिन्न कर देता है और लोक-मंगल की स्थापना करता है।

'हड्डियों के अन्दर,
तीखी चुभन,
टीसता दर्द,
शिराओं में घुलता जहर।
छटपटाहट के बाद
और दूनी छटपटाहट !!
जिन्दगी और मौत के बीच
लगती सीढ़ियाँ,
गिरता हुआ विश्वास,
एक अंध-कूप के भीतर
समाता हुआ भय।''

० ० ० ० ० ०

''सत्य और असत्य के बीच
कैसे बना रहता है हमारा अस्तित्व,
मैं स्वयं नहीं जानता।''

० ० ० ० ० ०

मेरी स्वर्गगामी माँ,
मेरे सामने ही,
ऐसी नारकीय यातना सहेगी

माँ को क्या-क्या सहना पड़ा होगा ? इस कल्पना मात्र से कवि काँप उठता है और अन्त में कैंसर, मृत्यु का कारण बना ! उस समय माँ की वह चीख सुन कवि कह उठता है—

"रात की सियाही में
मैंने कई बार ढूँढा है,
आसमान की छाती को—
तेजी से चीरती हुई
उनकी चीखों को।"

(डा० जगदीश गुप्त के ६६ वें जन्म-दिवस पर लिखित)

राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्त-पुरस्कार से

डा० जगदीश गुप्त विभूषित

श्रद्धेय डा० जगदीश गुप्त को मध्य प्रदेश साहित्य परिषद ने राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्त की स्मृति में आयोजित अखिल भारतीय सम्मान से विभूषित किया था। डा० जगदीश की गणना हिन्दी में नयी कविता के एक सर्जक के रूप में की जाती है। उनका जन्म विक्रम संवत् १९८१ में हुआ था। वे इस समय हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी' त्रैमासिक पत्रिका के प्रधान सम्पादक हैं और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अवकाश-प्राप्त अध्यक्ष हैं। वे बड़े ही स्नेही सुहृद, मृदुभाषी तथा मेरे परामर्शदाता अग्रज हैं। —व्रजमोहन गुप्त 'इन्द्रनारायण
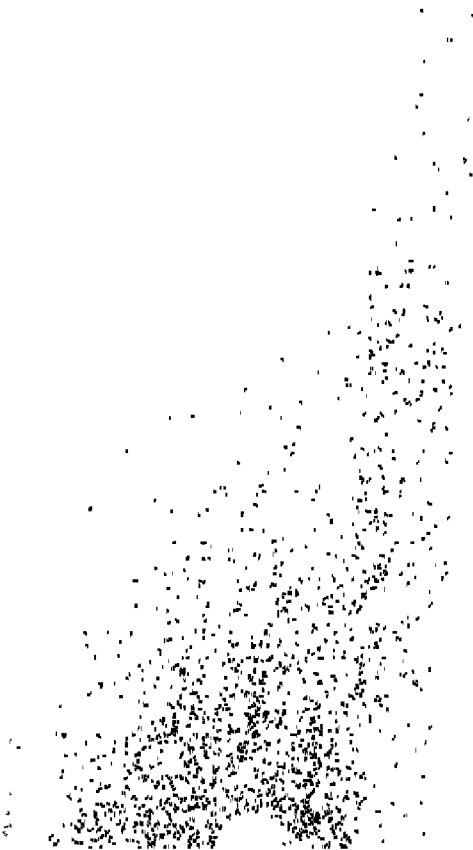
परिचय - ब्रजमोहन गुप्त "इन्द्रनारायण"

जन्म ■ १४ मार्च १९३७ ई० (सिहोर)
शुक्रवार, फाल्गुन शुक्ल द्वितीया, वि० संवत १९९३
७ जुलाई, १९३७ (शासकीय रिकार्ड में)

प्रकाशित कृतियाँ ■ काव्यार्चन (प्रथम काव्य-संकलन, १९७६)
■ एक और यात्रा (द्वितीय काव्य-संकलन, १९९२)
■ गद्य कल्प (गद्य-विधाओं का संकलन, १९९३)
■ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित तथा आकाशवाणी इन्दौर, भोपाल एवं जबलपुर से प्रसारित

सम्पादन ■ श्री जयशंकर 'प्रसाद' जन्मशती-विशेषांक १९८९
■ अवैतनिक सम्पादक—'यज्ञसेनी वैश्य समाज पत्रिका', कानपुर (१९९० से प्रकाशन स्थगित)

सम्प्रति ■ व्याख्याता — कन्या शिक्षा परिसर, छिन्दवाड़ा, आदिम जाति कल्याण विभाग (म० प्र०)

निवास ■ साहित्य कुटीर, गणेश चौक, छिन्दवाड़ा (मध्य प्रदेश)

प्रकाशनाधीन

यज्ञसेनी वैश्य जाति निरूपण
(यज्ञसेनी वैश्य वर्ग का उद्भव तथा विकास, इसी के साथ अन्य वैश्य वर्गों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण)

मुद्रक- ... प्रेस ... कानपुर